विराट् दर्शन

म नु ब ह न गां धी

अनुवादक : सोमेश्वर पुरोहित



नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद-१४

चि० मनुबहनने गांधीजोकी अंतेवासिनीके रूपमें आज तक गुजराती समाज तथा साहित्यको समृद्ध करनेवाली अनेक छोटी-मोटी पुस्तकें दी हैं। यह 'विराट् दर्शन' उनमें एक और पुस्तककी वृद्धि करती है । इस 'विराट् दर्शन' में वाइसरॉय लॉर्ड माउन्टबेटनके सिवा गांधीजीके सात अंतेवासी स्वजनोंके जीवनके रेखाचित्र प्रस्तुत किये गये हैं । व्यक्तिगत जोवन द्वारा जीवनके तत्त्वज्ञानकी झांकी करानेवाली पुस्तक साहित्यमें मुश्किलसे ही कहीं देखनेमें आती है । इस दृष्टिसे इस पुस्तकका बहुत बड़ा मूल्य है । पाठक विचारपूर्वक यह पुस्तक पढ़ेंगे, तो उन्हें अपने जीवनमें इससे कीमती मार्गदर्शन मिलेगा ।

–मोरारजी देसाई

विराट् दर्शन

मनुबहन गांधी

गुजरातीसे अनुवाद
सोमेश्वर पुरोहित



नवजीवन प्रकाशन मंदिर
अहमदाबाद – १४

मुद्रक और प्रकाशक
शांतिलाल हरजीवन शाह
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद–१४

पहला संस्करण २०००

रु. ३.००

अक्तूबर, १९६९

दो शब्द

चि० मनुबहनने गांधीजीकी अंतेवासिनीके रूपमें आज तक गुजराती समाज तथा साहित्यको समृद्ध करनेवाली अनेक छोटी-मोटी पुस्तकें दी हैं। यह 'विराट् दर्शन' उनमें एक और पुस्तककी वृद्धि करती है। मनुबहनकी तबीयत नाजुक है, फिर भी ये पुस्तकें देनेके साथ साथ उन्होंने सारे भारतकी यात्रा करके देशकी शालाओं और कॉलेजोंमें लाखों श्रोताजनोंको गांधीजीके जीवनके विभिन्न और विविध पहलुओंका दर्शन कराया है। भारतकी नई पीढ़ीके लिए इन पुस्तकों और प्रवचनोंके द्वारा गांधीजीका जीवन-मंत्र समझनेमें बड़ी सरलता हुई है। इस 'विराट् दर्शन' में वाइसरॉय लॉर्ड माउन्टबेटनके सिवा गांधीजीके सात अंतेवासी स्वजनोंके जीवनके रेखाचित्र प्रस्तुत किये गये हैं। व्यक्तिगत जीवन द्वारा जीवनके तत्त्वज्ञानकी झांकी करानेवाली पुस्तक साहित्यमें मुश्किलसे ही कहीं देखनेमें आती है। इस दृष्टिसे इस पुस्तकका बहुत बड़ा मूल्य है। पाठक विचारपूर्वक यह पुस्तक पढ़ेंगे, तो उन्हें अपने जीवनमें इससे कीमती मार्गदर्शन मिलेगा।

गांधीजी जितने शांत और नम्र थे उतने ही प्रतापी और विराट् थे। एक तरहसे कहा जाय तो सत्य और अहिंसाकी बुनियादी बात समझ लेनेके बाद गांधीजीके जीवनमें गूढ़ तत्त्व कम दिखाई देता है। फिर भी उनके मार्ग पर चलना आसान नहीं है। उस पर चलनेके लिए कदम कदम पर तप और त्यागकी कसौटीमें से गुजरना अनिवार्य हो जाता है। मनुबहनकी पुस्तकोंमें दी गई छोटी छोटी घटनाओं तथा प्रसंगोंकी मददसे गांधीजीकी जीवन-दृष्टि तथा कार्य-पद्धतिको समझना बहुत आसान हो जाता है। छोटे बच्चे, अपढ़ स्त्री-पुरुष और सुशिक्षित भाई-बहन सभी इन पुस्तकोंसे लाभ उठा सकते हैं।

चि० मनुबहनके इस प्रयासका मैं हृदयसे स्वागत करता हूं और आशीर्वाद देता हूं कि उनकी सेवाका प्रवाह चलता रहे और अधिक शक्तिशाली बनता रहे।

७, त्यागराज मार्ग
नई दिल्ली
५–२–१९६४

मोरारजी देसाई

भूमिका

कई वर्ष पहले कुमारी मनुबहन गांधीकी 'विराट् दर्शन' पुस्तक गुजरातीमें प्रकाशित हुई थी और उसका व्यापक स्वागत हुआ था। इस पुस्तक पर यूनेस्कोकी ओरसे भी पुरस्कार दिया गया है। यह आनन्द व सन्तोषकी बात है कि अब इसका हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित हो रहा है।

'विराट् दर्शन' में कुमारी मनुबहनने महात्मा गांधीके जीवनकी अत्यन्त मार्मिक घटनाओंका जिक्र किया है। उन्हें पूज्य बापूजीके सान्निध्यमें आगाखान महल और फिर नोआखालीमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मनुबहन दिन-प्रतिदिनकी घटनाओंकी डायरी भी नियमित रूपसे लिखती रहीं। उन्हें गांधीजीको बहुत नजदीकसे देखने और समझनेके स्वर्ण अवसर मिलते रहे और उनके पास इस सम्बन्धमें जो सामग्री है वह सचमुच बहुत मूल्यवान है।

पूज्य बापूजीके विराट् दर्शनके अलावा इस पुस्तकमें ऐसे कई महापुरुषोंकी जीवन-झांकियां मिलती हैं, जिनका गांधीजीसे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। पूज्य महादेवभाई, श्रद्धेय किशोरलाल मशरूवाला और श्री देवदासभाईकी विभिन्न स्मृतियोंसे उनके प्रति हमारी श्रद्धा अधिक गहरी बन जाती है। सरदार वल्लभभाई पटेल, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरहदी गांधी खान अब्दुल गफ्फार खान, श्रीमती सरोजिनी नायडू और लॉर्ड व लेडी माउन्टबेटनके भावपूर्ण संस्मरण भी सम्मिलित किये गये हैं। इसलिए इस प्रकाशनका महत्त्व और भी बढ़ गया है।

इस सुन्दर और उपयोगी पुस्तकको लिखनेके लिए मैं कुमारी मनुबहनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूं। मुझे पूरी आशा है कि

हिन्दी जगतमें इस हिन्दी संस्करणका बहुत अच्छा स्वागत होगा। गांधी-जन्म-शताब्दी वर्षमें इसका प्रकाशन हो रहा है, यह विशेष सन्तोषका विषय है।

राजभवन
अहमदाबाद
३ जुलाई, १९६९

श्रीमन्नारायण

अनुक्रमणिका

विराट् दर्शन

নাটক সমগ্রী

१

विराट् दर्शन

पूज्य बापूजी एक विराट् विभूति थे। उनके चरणोंमें, उनकी छत्रछायामें सुख और शांतिका अनुभव करनेवाले हजारों भाई-बहन भारतमें और विदेशोंमें रहे होंगे। उनमें मुझे भी, जब मैं एक हंसती, खेलती, कूदती छोटी बाला ही थी उस समय, इस आमकी मीठी छायामें पहुंचनेका सौभाग्य ईश्वरकी कृपासे प्राप्त हुआ था। ग्रीष्मऋतुकी असह्य गरमी और चिलचिलाती धूपसे घबराये हुए किसी मुसाफिरको अचानक मीठे सुगंधित आमोंसे लदी हुई अमराई मिल जाती है तब उतनी धरती उसे धरती नहीं बल्कि स्वर्ग मालूम होती है। अपने छोटेसे जीवनमें मैंने ऐसा बहुत अनुभव किया है, बहुत पाया है और मीठे मीठे फल भी खाये हैं। ऐसे विराट् विभूति बापूके तथा उनके संपर्कमें आये हुए कुछ विशिष्ट व्यक्तियोंके प्रसंग-चित्रोंका दर्शन और स्मरण करके हम कृतार्थ हों।

न त्वहं कामये राज्यं
न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां
प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

१

महाभारतके युद्धमें अर्जुनने जब सामने खड़ी कौरवोंकी सेनामें अपने गुरुजनों और प्रियजनोंको देखा, तो उसके हाथ कांपने लगे। उसके मनमें यह विचार उठा : "इन सबको मारकर मैं राज्यका उपभोग नहीं करना चाहता।"

श्रीकृष्ण भगवान समझते थे कि इस युगमें धर्मका अर्थात् मानव-धर्मका लोप हो गया है, और यदि ऐसा ही चलता रहा तो संसारकी हस्ती ही मिट जायगी। किसी न किसीको तो उन्हें इस स्थितिको बदलनेका निमित्त बनाना ही था। भगवानने जब देखा कि समझानेसे अर्जुनको संतोष नहीं होता, तब अंतमें उन्हें अपना विराट् रूप उसे दिखाना पड़ा।

हमारे अपने युगमें भी एक ऐसा ही विराट् दर्शन पूज्य बापूका था। जिन लोगोंने अपना मन और भक्ति बापूके चरणोंमें अर्पण की — फिर वे पंडित हों या अपढ़ मूर्ख, पुरुष हों या स्त्रियां, पागल हों या समझदार, अपने हों या पराये, देशी हों या विदेशी — उन सबको बापूने अपनाया, तालीम देकर सुयोग्य बनाया, जगतमें प्रसिद्ध किया, जिलाया और जीनेका मंत्र सिखाया। जिसके पास जैसा भी व्यक्तित्व था उसे चमेलीकी बेलकी तरह प्रेमका जल पिलाकर बापूने बढ़ाया और दुनियामें सुवासित किया। ऐसे कुछ सुगंधित फूलोंकी सुवास हम भी सूंघें और पवित्र बनें।

इसका आरंभ हम जीवनमें एक-दूसरेके पूरक बननेवाले बापू और कस्तूरबासे ही करेंगे।

२

ईश्वरके इस जगतका और ईश्वरकी लीलाका जब हम विचार करते हैं तब इतना हमें स्वीकार करना पड़ता है कि हम — पुरुष क्या और स्त्रियां क्या — कितना ही प्रयत्न और प्रयास क्यों न करें, एक-दूसरेके साथ सहयोग किये बिना अपने जीवनको हम सफल नहीं बना सकते । परस्पर सहयोगके बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता । आज दुनिया दिनोंदिन आगे बढ़ रही है । स्त्रियां पुरुषोंसे हर क्षेत्रमें होड़ करने लगी हैं । यहां मैं इसके लाभ या हानिकी चर्चामें नहीं जाऊंगी । परन्तु अपने छोटेसे जीवनके अनुभवके आधार पर एक बात मैं बहुत नम्रतासे कहना चाहती हूं कि अगर स्त्री और पुरुष एक-दूसरेसे गलत और खतरनाक होड़ करना छोड़ दें और एक-दूसरेके पूरक और सहायक बननेका प्रयत्न करें, तो संभव है कि भारतमें फिरसे दूध और घीकी नदियां बहने लगें और घर घरमें हमें आनंद, स्वराज्य और सुराज्यके दर्शन हों ।

बा और बापूजीका जीवन इस बातका एक ज्वलन्त उदाहरण है ।

बा और बापूका जीवन सामान्यसे असामान्य कैसे बना, इसका एक क्रमिक इतिहास है । दोनों आरंभमें बिलकुल सामान्य पति-पत्नी थे । किन्तु जीवनमें एक एक सीढ़ी चढ़ते चढ़ते दोनों असामान्य, आदर्श और अनोखे पति-पत्नी बन गये । तेरह बरसकी किशोरी और तेरह बरसके किशोरसे बा और

बापूने अपनी जीवन-यात्रा शुरू की । इतनी छोटी उमरमें विवाह होनेके कारण दोनोंमें से एकको भी इस बातकी कल्पना नहीं थी कि यह सब क्या हो रहा है । अगर कोई खयाल था तो इतना ही कि दोनोंको बढ़िया कपड़े पहननेको मिले, मिठाइयां खानेको मिलीं और दोनोंने ढोल, बाजे-गाजे, शहनाई वगैराका आनंद लूटा । दोनों शुरू शुरूमें एक-दूसरेसे डरते थे । धीरे धीरे दोनों एक-दूसरेको पहचानने समझने लगे ।

लेकिन बेचारी कस्तूरबाकी स्थिति बड़ी दयनीय थी । आरंभके विवाहित जीवनमें बापू अंध पत्नी-भक्त थे । भोग-विलास और ऐश-आराममें लीन रहते थे । वे पत्नीको कहीं बाहर न जाने देते थे; उस पर शंका और संदेह रखते थे; हवेलीमें देव-दर्शनके लिए जाती तो भी वे पत्नीको रोकते थे ! किन्तु कुछ ही वर्ष बाद बापूने जीवनमें भोगका मार्ग छोड़कर त्यागका मार्ग पकड़ा । जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीकामें भारतकी दबी और पिसी हुई प्रजा पर होनेवाले गोरोंके अन्याय और अत्याचारको अपनी आंखोंसे देखा तब जिस पत्नी पर वे बेहद शंका और संदेह रखते थे (जैसे स्त्रीको घरसे बाहर नहीं निकलना चाहिये, हवेलीमें देव-दर्शनके लिए भी नहीं जाना चाहिये वगैरा), उसी पत्नीको उन्होंने हजारों लोगोंके सामने भाषण देनेको भेजा, बाजारमें दुकानों पर पिकेटिंग करनेको भेजा और जेलमें भी भेजा ! इस तरह दोनोंके जीवनमें एकाएक परिवर्तन आया । कस्तूरबाकी महानता तो देखिये । जब बापूने भोग-विलासका जीवन छोड़कर त्यागमय

जीवनका व्रत लिया, तो उसमें भी बाने बापूका पूरा साथ दिया ।

इतना सब होते हुए भी बाका बापूसे अलग अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व था । वे बापूके प्रति अंधश्रद्धा रखनेवाली पत्नी नहीं थीं । बापूके कोई विचार बाको पसंद न आते तब उनके सामने साफ 'ना' कहनेकी हिम्मत भी वे दिखा सकती थीं। इस सम्बन्धमें बापूकी 'आत्मकथा' का एक प्रसंग मशहूर है । बापू डरबनमें वकालत करते थे, उन दिनों उनके क्लार्क भी परिवारके सदस्य बनकर उनके साथ रहते थे । यूरोपियन ढंगके मकानमें पेशाबके लिए खास बरतन रखे जाते थे, जिन्हें उठानेका काम नौकरका नहीं लेकिन बापू और बाका था । एक दिन बाने पंचम जातिके एक नये आये हुए क्लार्कका बरतन उठानेमें नाराजी प्रकट की । बापूको यह बरदाश्त नहीं हुआ । उन्होंने बाका हाथ पकड़ा और घरसे उन्हें बाहर निकालने लगे ।

बाने कहा : "अपनी पत्नीको इस तरह घरसे बाहर निकालते तुम्हें शर्म नहीं आती?"

ये शब्द सुनते ही बापूको अपनी गलतीका भान हुआ। वे बड़े शरमिन्दा हुए: 'यह मैंने क्या किया!' इसके बाद धीरे धीरे बापूने बाके अनुकूल बननेका प्रयत्न किया । बाने भी इस प्रयत्नमें उनका साथ दिया और उसे सफल बनाया । मेरी ही बात सही है, दूसरोंकी गलत — ऐसा माननेका अवगुण बामें नहीं था । गहरा विचार करने पर

जैसे जैसे बाकी समझमें आता गया कि बापूका बातें सही हैं, वैसे वैसे बा बापूके अनुकूल बनती गईं ।

बा और बापूके व्यक्तिगत जीवनमें जो परिवर्तन हुए उनका प्रतिबिम्ब उनके सार्वजनिक जीवन आर राजनीतिक जीवन पर भी पड़ा । दक्षिण अफ्रीकामें गोरोंके अन्यायोंका विरोध करनेके लिए जब बापूने सत्याग्रहकी लड़ाई.आरंभ की, तब उनका ध्यान वहांके भारतीय समाजमें घुसी हुई एक बुराईकी ओर गया । वह थी समाजकी स्त्रियोंकी पराधीनता । उन्होंने सोचा: पुरुष और स्त्री समाजरूपी रथके दो चक्र हैं । लेकिन उनमें से एक स्त्रीरूपी चक्रको समाजने और गुलामीके वातावरणने कीचड़में इस हद तक फंसा दिया है कि उसे कीचड़से यदि बाहर न निकाला गया तो वह सड़-गल कर नष्ट हो जायगा । इसलिए कीचड़में फंसे हुए उस चक्रको बाहर निकालनेका यह अच्छा मौका है । अभा भी उसमें कुछ शक्ति बची है । उस शक्तिका उपयोग किया जाय, तो भारतीय समाजको दक्षिण अफ्रीकामें बहुत लाभ होगा । लेकिन इस बात पर अमल कैसे किया जाय?

बापूके जीवनका एक अनोखा सिद्धान्त यह था कि किसी भी विचारका प्रयोग सबसे पहले अपने पर या अपना माने जानेवाले व्यक्ति पर सदा किया जाय। बापू 'परोपदेशे पांडित्यं' में विश्वास नहीं करते थे । जिस समयकी बात मैं लिख रही हूं उस समय बापूमें कठोर और शंकाशील पतिका अवगुण नहीं रह गया था । इसके विपरीत, बाने उनके त्यागमें जो सहयोग दिय था उसके लिए बापूके मनमें बड़ा आदर

था। बामें जो भी दोष हों उन्हें दूर करके वे बाके पूरक बनना चाहते थे। बा दुनियाकी दृष्टिसे अशिक्षित और अपढ़ थीं। इसलिए बापूके उस समयके विचारोंको समझना बाके लिए शायद कठिन पड़ता होगा। फिर भी बापू बाकी बुद्धि-शक्तिका पूरा विकास करना चाहते थे। इसमें उन्हें सफलता मिलने पर ही वे दूसरे अनेक पतियोंसे कह सकते थे कि अपनी स्त्रियोंका विकास आप लोग स्वतंत्र रीतिसे होने दीजिये; उनके दोषोंको दूर करके आप उनके पूरक बननेका प्रयत्न कीजिये। इस प्रयत्नमें बापू स्वयं कैसे सफल हुए, यह दिखानेके लिए हम बा और बापूके संवादको उन्हींके शब्दोंमें देखें।

३

यह १९१३ की बात है। दक्षिण अफ्रीकाके केप सुप्रीम कोर्टके एक न्यायाधीशने एक मुकदमेमें ऐसा निर्णय दिया, जिसके अनुसार ईसाई पद्धतिसे हुए विवाह ही सच्चे और कानूनी माने जा सकते थे; बाकीके सब विवाह गैर-कानूनी हो जाते थे। बापूको लगा कि यह तो भारतीय संस्कृतिके हृदय पर किया गया सीधा प्रहार है। इसलिए इस कानूनको रद करानेके लिए उन्होंने वहांकी गोरी सरकारके खिलाफ सत्याग्रहकी लड़ाई छेड़ी। बापू मानते थे कि विवाहका यह प्रश्न स्त्रियोंसे ज्यादा सम्बन्ध रखता है, इसलिए स्त्रियां भी इसमें भाग लें तो अधिक अच्छा हो। बापूके मनमें प्रश्न उठा: "बा इसमें कूदेगी क्या? शायद मेरी बात मान

कर वह जेलमें चली जाये; परन्तु वहांके कष्ट न सहन होने पर हार जाये और माफी मांग ले तो ?"

जिस समय यह प्रश्न बापूके मनमें उठा उस समय बा बापूको खाना खिला रही थीं। बात ही बातमें बाने कहा : "आपने जो लड़ाई शुरू की है और स्त्रियोंको सत्याग्रह करनेका आदेश दिया है, उसके बारेमें आप मुझसे जरा भी बात नहीं करते। इससे मुझे बहुत दुःख होता है। मुझमें ऐसी क्या खामी है कि मैं जेल न जा सकूं ? मुझे भी उसी रास्ते जाना है जिस रास्ते जानेकी आपने दूसरी बहनोंको सलाह दी है। मुझ पर आपका इतना भी विश्वास नहीं ?"

बापूने कहा : "मैं तुझे दुःखी करना नहीं चाहता। इसमें अविश्वासकी भी कोई बात नहीं है। तेरे जेल जानेसे मुझे अपार आनंद होगा। लेकिन तू मेरे कहनेसे जेल गई है ऐसा आभास भी प्रकट हो, तो वह मुझे बिलकुल पसंद नहीं होगा। इस तरहके काम सबको अपनी हिम्मतसे ही करने चाहिये। मैं तुझसे कहूं इसलिए तू मेरी बात रखनेके लिए जेल चली जाय और बादमें जब केस चले तो कोर्टमें कांपने लगे या जेलके त्राससे घबरा कर पीछे हट जाये, तो मेरे क्या हाल हों ? उस स्थितिमें मैं तुझे अपने साथ कैसे रख सकूंगा, या दुनियाको क्या मुंह दिखाऊंगा ?"

बापूकी यह बात सुनकर बा बीचमें ही बोल उठीं : "मैं हारकर अगर पीछे हट जाऊं, तो आप मुझे अपने साथ न रखें। अब कुछ कहना है आपको ? मेरे इस रामदास जैसे छोटे छोटे लड़के और दूसरी स्त्रियां अगर डरनेवाली

और हारनेवाली नहीं हैं, तो मैं अकेली ही डर जाऊंगी या हार जाऊंगी ऐसी कल्पना भी आप कैसे कर सकते हैं ? मुझे इस लड़ाईमें शरीक होना ही है।"

बापू बोले : "तब तो मैं जरूर तुझे सत्याग्रहियोंकी टुकड़ीमें भेजूंगा। मेरी शर्तें तू जानती है; मेरे स्वभावसे भी तू अच्छी तरह परिचित है। अभी भी सोचना हो तो सोच ले। जब तक सत्याग्रहकी लड़ाईमें तू कूदती नहीं तब तक तो निश्चयको बदलनेमें कोई शरम नहीं। परन्तु एक बार कूद पड़नेके बाद फिर किसी भी हालतमें पीछे नहीं हटा जा सकता।"

बाने उत्तरमें कहा : "मुझे कुछ नहीं सोचना है। मेरा तो दृढ़ निश्चय ही है।"

और तबसे यानी १९१३ से १९४२ तकके लंबे समयमें बाने अनेक बार जेलकी कठोर यातनायें हंसते हंसते सहन कीं और उसीमें अपने हाड़-मांसको गलाकर अंतमें १९४४ में आगाखान महलकी नजरबंदीमें ही स्वाधीनताकी बेदी पर अपनी आहुति दे दी।

बापूने अगर पतिका हुक्म चला कर बाको सत्याग्रहकी लड़ाइयोंमें शामिल किया होता, तो बा और बापूका रूप कुछ दूसरा ही होता। लेकिन बापूने 'अपढ़' बाको अपनी प्रवृत्ति-योंके बारेमें धीरजके साथ समझाया और उनकी बुद्धि और शक्तिका विकास किया। बाने भी धीरे धीरे दृढ़ बन कर बापूकी प्रवृत्तियोंको अपने जीवनका अंग मान लिया। एक

समय जिन बाको पंचम जातिके क्लार्कका पेशाबका बरतन उठानेमें भी नफरत होती थी, उन्हीं बाने साबरमती आश्रममें एक छोटोसी हरिजन बाला — लक्ष्मी — को सगी मांसे भी अधिक प्रेम और वात्सल्यसे पाला-पोसा, यह उनके जीवनकी कोई सामान्य विकास-कथा नहीं है।

बाके जीवनके दो-एक प्रसंग और मैं यहां देना चाहती हूं।

४

१९४२ की बात है। मैं पहली ही बार सेवाग्राम आश्रममें गई थी। मेरी उमर उन दिनों केवल १० बरसकी थी। उस समय मैं आश्रमके वातावरणसे बहुत परिचित नहीं थी। पिताकी सबसे छोटी संतान थी, इसलिए खूब लाड़-प्यारमें पली थी। आश्रममें उबाला हुआ भोजन मिलता था, जिसमें नमक भी नहीं होता था। सारा काम अपने हाथसे करना पड़ता था। इससे पहले न तो कभी मैंने हाथसे कपड़े धोये थे, न कभी हाथसे बरतन मांजे थे। पूज्य बाने मेरी इस कठिनाईको समझ लिया। लेकिन बापूके आश्रमका पहला नियम यह था कि हर आश्रमवासी स्वावलंबी बने — किसी दूसरे पर आधार न रखे। बापू स्वयं मेरे कामोंमें थोड़ी मदद करने लगे; मेरे साथ रहकर और प्रेमसे समझाकर मुझसे हर काम कराने लगे।

दुपहरीमें बा रोज दो-तीन घंटे चरखा चलाती थीं। बाने मुझे आदेश दिया कि कताईके समय मैं उन्हें अखबार

पढ़ कर सुनाया करूं। मैं अखबार हाथमें लेकर पढ़ना शुरू करूं, इसके पहले ही बाने मुझसे पूछा: "तू चरखा नहीं लाई, मनु ?"

मैं शरमसे जैसे गड़ गई।

मैंने कह तो दिया कि नहीं लाई, लेकिन उस समय मुझे ऐसा लगा कि चरखेके बिना बाके पास खड़ा ही कैसे रहा जा सकता है। मनमें मैं डर भी रही थी कि बा कहीं मुझे डांट न पिलायें। लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। इसके बजाय उन्होंने प्रेमसे भरे शब्दोंमें मुझे चरखेकी मधुर 'फिलॉसफी' — तत्त्वज्ञान समझाया। बाके वे शब्द आज भी मेरे कानोंमें गूंज रहे हैं।

उन्होंने मुझे समझाया: "चरखेके बिना हमारा काम कैसे चल सकता है? हमें रोज कातना ही चाहिये। तुझे कपड़े तो रोज पहनने पड़ते हैं। कपड़े हम केवल शरीरकी लाज ढांकनेके लिए ही नहीं पहनते। कपड़े सरदी और गरमीमें हमारे शरीरकी रक्षा भी करते हैं। इसलिए कपड़े हमारे लिए बहुत जरूरी हैं। यही कारण है कि तू बिना भूले ठेठ कराचीसे यहां तक सन्दूकमें कपड़े रख कर लाई है। किसी जगह एकाध दिनके लिए जाना हो तो भी हम याद रखकर एक-दो जोड़ कपड़े तो साथ ले ही जाते हैं। जाने अनजाने हमें यह आदत पड़ जाती है।

"ऐसी ही आदत अगर हिन्दुस्तानके लोगोंको चरखा चलानेकी पड़ जाय, तो राष्ट्रका और बापूजीका काम कितनी

तेजीसे आगे बढ़े ? यह ले, मैं तुझे चरखा देती हूं । इस पर तू सूत कातना ।"

और उन्होंने अपने पासका एक चरखा मुझे दे दिया । आज भी वही चरखा मेरे पास है । कौन कहेगा कि बा अपढ़ थीं ? कौन कहेगा कि बाको चरखेका ज्ञान नहीं था ? और कौन कह सकता है कि बाको इस बातका ज्ञान नहीं था कि चरखेसे हिन्दुस्तानकी आर्थिक दशा सुधरेगी और देशका उद्धार होगा ?

बा अपने जीवनकी आखिरी सांस तक बापूके बताये हुए चरखेको भूली नहीं थीं । जिस दिन वे चरखा न चला पातीं उस दिन उनका खून जल जाता था । और यह सब वे किसके लिए करती थीं ? भारत माताके बालकोंके सुखके लिए !

बापू बड़ी दृढ़तासे व्रतोंका पालन करते थे। लेकिन बा उनसे भी अधिक दृढ़तासे व्रतोंका पालन करती थीं । इसीलिए बापूने कहा था कि मेरे जीवनमें यदि बाका साथ और सहयोग न होता, तो आज मैं किसी गिनतीमें न होता ।

बापूके मुंहसे जिस अवसर पर ये उद्गार निकले वह अवसर भी इतना ही अद्भुत था ।

५

१९४३–४४ में कस्तूरबा आगाखां महलमें नजरबन्द थीं । वे हृदय-रोगसे पीड़ित थीं । मैं उस समय नागपुर जेलमें थी । लेकिन ईश्वरकी कृपा और मेरे सौभाग्यसे बाके

चाहने पर अंग्रेज सरकारने मुझे बीमारीमें उनकी सेवाके लिए आगाखां महलमें भेज दिया था।

बापूजी बकरीका दूध पीते थे। बाने रोज कपड़ेसे छानकर दूध गरम करनेका रिवाज डाला था। जिस शामकी बात मैं लिख रही हूं उससे एक दिन पहले मेरे पिताजीका कराचीसे भेजा खजूरका एक पार्सल आया था। उस पार्सल पर एक सुन्दर बारीक कपड़ा लपेटा हुआ था। उसे मैंने सावधानीसे निकाला और अच्छी तरह धोकर रख लिया। रोज शामको करीब पांच बजे बकरीका दूध आता था। वह समय हमारा बैडमिन्टन खेलनेका था। बहुत बार दूधके आने और हमारे खेलनेका समय एक ही हो जाता था। उस समय दूधको खादीके मोटे कपड़ेसे छाननेमें सहज ही पांच-दस मिनट लग जाते थे। खेलके समय इतनी देर दूध छाननेमें लगाना कुदरती तौर पर ही मेरे जैसी छोटी लड़कीको अच्छा नहीं लगता था। इसीलिए वह बारीक कपड़ा मैंने रख लिया था। मैं यह सोच कर खुश हो रही थी कि अब इस कपड़ेसे एक ही मिनटमें सारा दूध छन जायगा। खेलनेवाले सब लोग ऊपरसे उतर कर नीचे मैदानमें पहुंचेंगे तब तक तो मैं भी दूध छानकर एक दौड़में वहां जा पहुंचूंगी।

एक बात और बता दूं। मेरे साथ बैडमिन्टन खेलनेवाले सब लोग लगभग प्रौढ़ और वृद्ध थे। जैसे, डॉ० गिल्डर, प्यारेलालजी, सुशीलाबहन, मीराबहन, जेल-सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब, कटेली साहब वगैरा। सभी तीस वर्षसे ऊपरके और पचास पचपन वर्षके आसपासके थे। मैं सबसे छोटी थी, इसलिए मुझे

चिढ़ानेमें उन्हें मजा आता था । लेकिन अपनी ऊपर बताई शोधके कारण आज मैं सबको चिढ़ा रही थी कि एक सेकंडमें ही दूध छानकर मैं आप सबके साथ खेलने आ पहुंचूंगी !

रोजकी तरह आज भी मैं टेबल पर दूध छान रही थी, लेकिन आज उस बारीक कपड़ेसे — खादीके मोटे कपड़ेसे नहीं ! बा अपने पलंग पर आराम कर रही थीं । वे रोजकी तरह मेरी दूध छाननेकी क्रियाको ध्यानसे देख रही थीं । (उन्हें गिल्डर साहब, सुशीलाबहन वगैरासे हुए मेरे मजाकका पता नहीं था ।) मुझे पुकारते हुए बाने कहा : "तू जिस कपड़ेसे दूध छान रही है, वह कपड़ा लेकर मेरे पास आ तो !"

मैंने सोचा कि बा मुझसे ज्यादा क्या पूछेंगी । उन्हें स्वच्छताकी चिन्ता रहती है, इसलिए वे इतना ही पूछेंगी कि कपड़ा साफ है या नहीं । इसलिए मैंने खेलनेके लिए तुरन्त मुक्ति मिल जाय इस खयालसे उतावलीमें कह दिया : "मोटी बा, आप कपड़ेका क्या करेंगी ?" मुझ पर यही धुन सवार थी कि मैंने कपड़ा धोकर ही रखा था और इस समय मैं धोये हुए साफ कपड़ेसे ही दूध छान रही हूं । बापूजीके साथ रहनेवाले सब गुरुजन भी इसके साक्षी हैं । फिर क्यों बा कह रही हैं कि कपड़ा लेकर मेरे पास आ ?

मैं दूध छानती रही ।

बाने कहा : "दो बार तुझे पुकारा, पर तू आती नहीं । चल, कपड़ा लेकर मेरे पास आ !"

किसीने मुझसे कहा: "बा बीमार हैं। इसलिए वे जो कहें वह उसी क्षण कर देना चाहिये। हम सही हों तो भी।"

मैं थोड़े गुस्सेमें और थोड़ी शानमें बाके पास गई और उनके सामने बिना कुछ पूछे बोल गई: "देखो बा, यह कपड़ा सादा है और अच्छा है। कहीं फटा हुआ भी नहीं है, बिलकुल नया है। और अगर यह देखनेको बुलाया हो कि दूध कहीं बिना छाने ही बरतनमें न चला गया हो, तो . . .।" इस तरह कई वाक्य एक सांसमें मैंने कह डाले।

बाके पास या बापूके पास मैंने कभी यह महसूस नहीं किया कि वे महान हैं। और लोगोंके दादा-दादीकी तरह मैं भी उन्हें अपने दादा और दादी ही मानती थी—जिनके साथ स्वाभाविक रूपमें उठा जा सकता है, बैठा जा सकता है, बोला जा सकता है, खाया-पिया जा सकता है। दोनोंकी अनोखी नम्रताका या महानताका विचार आज जब करती हूं, तो मुझे इस बातका अपार पश्चात्ताप होता है कि मैंने बालबुद्धिमें दोनोंके सामने न मालूम कैसी कैसी अनुचित बातें कह डाली थीं। आज तो अर्जुनकी वह प्रार्थना करके नम्र प्रणामके साथ दोनोंसे क्षमा ही मांग सकती हूं:

"हे प्रभु, तुम्हारी महिमाको भूल कर एकान्तमें अथवा सबके सामने विनोदमें मैंने मर्यादाका जो उल्लंघन किया हो, उसके लिए हे अप्रमेय, मैं तुमसे क्षमा मांगता हूं।"

बाने मेरा वह कपड़ा हाथमें लिया। गंभीर बीमारीके कारण उनके हाथ पतले पतले हो गये थे। खांसी और दमके कारण बोलनेमें भी उन्हें तकलीफ होती थी। फिर भी बोलीं: "यह खादीका कपड़ा है?"

सब कोई स्तब्ध हो गये! मैं तो उनके इस प्रश्नसे कांप उठी। मानो खूंटेकी तरह जमीनमें गड़ गई!

"तू जानती है न कि बापू आग्रहके साथ खादीका व्रत पालते हैं। बापू जो दूध पीनेवाले हैं, उसे तूने इस मिलके कपड़ेसे छाना है। इस दूधसे बापूका खून बनेगा, जीवन-शक्ति बनेगी। बोल, तूने कितना बड़ा पाप किया है? इससे तो बापूके शरीरमें जहर ही पैदा होगा। उन्हें पता न होनेसे वे ऐसा मान कर दूध पी लेंगे कि खादीके कपड़ेसे ही दूध छाना गया है। व्रतके पालनका आधार व्रत लेनेवालेके बजाय जो व्रतका पालन करवाता है उस पर अधिक होता है। अगर हम लिये हुए व्रतके पालनका आग्रह न रखें, तो इसी तरह धीरे धीरे नीचे गिर सकते हैं और गहरी खाईमें पहुंच सकते हैं।"

हम सब बाके ये वचन सुनते ही रहे। आगाखां महलमें हमारे साथ एकसे एक बढ़ कर पढ़े-लिखे और सयाने लोग थे, लेकिन देखते हुए भी यह बात किसीके ध्यानमें नहीं आई कि यह कपड़ा मिलका है। इससे बापूका दूध नहीं छाना जा सकता। लेकिन बाकी दृष्टिने यह देख लिया।

अंतमें बाने मुझसे कहा : "जा, दूधको फिरसे खादीके कपड़ेसे छान। उसके बाद ही गरम करना। अब कभी ऐसी भूल न करना।"

कौन कहेगा कि बाने गीताको पचा नहीं लिया था? कौन कहेगा कि बा आर्य-संस्कृतिकी उपासक नहीं थीं अथवा आर्य नारी नहीं थीं ?

सेवाग्राम आश्रममें बापूकी कुटियामें जानेसे पहले बड़े बड़े नेता और विदेशी मेहमान बाकी कुटियामें जाते थे। वे यह मान कर बाके पास नहीं जाते थे कि बा बापूकी पत्नी हैं, परन्तु बाके प्रेम और ममताके कारण ही भक्तिभावसे उनके पास पहुंचते थे। बा सबके कुशल-समाचार पूछती थीं, खाने-पीने और रहनेकी व्यवस्थाके बारेमें पूछताछ करती थीं। उनके मनमें महात्माकी पत्नी होनेका रत्ती भर भी अभिमान नहीं था। अपने व्यक्तित्वको बापूके जीवनमें लीन करके वे केवल बापूकी ही नहीं, सारे भारतकी बा बन सकी थीं।

आश्रमके एकादश व्रतोंका बाने संपूर्ण और अखंडित रूपमें पालन किया था। गीताके शब्दोंमें कहा जाय तो बाकी श्रद्धा सात्त्विक श्रद्धा थी।

गीतामें भगवान कहते हैं : "जो लोग फलकी आशा रखे बिना अपना कर्तव्य करते हैं उनका तप सात्त्विक हैं; जो लोग सम्मान और सत्कारकी आशा रखते हैं और पूजा करानेके लिए पाखंडका आचरण करते हैं उनका तप राजसी

है; और जो लोग मूर्खता तथा दुराग्रहसे अपनी प्रशंसाके लिए ही तप करते हैं उनका तप तामस है।'' इस दृष्टिसे देखें तो बाका तप शुद्ध सात्त्विक तप था। वे अपने लिए ईश्वरसे कुछ भी नहीं मांगती थीं। उन्होंने भारतकी धरती पर बसे हुए प्रत्येक मानवके सुख और शांतिकी कामना करते करते ही अपने प्राणोंकी आहुति दी थी।

बापूने भी बड़े सरल भावसे यह बात स्वीकार की थी कि मैं आज जो कुछ हूं उसका संपूर्ण श्रेय बाको ही है। कैसी भव्य अंजलि है!

बा और बापूने एक-दूसरेके जीवनमें — जीवन-कार्यमें साथ और सहयोग देकर, एक-दूसरेके पूरक बन कर अपने जीवनको सार्थक बनाया था। भारतकी पवित्र भूमि पर महर्षि वसिष्ठ और माता अरुन्धतीने, हरिश्चन्द्र और तारामतीने, रामकृष्ण परमहंस और माता शारदा देवीने एक-दूसरेके पूरक बननेका जो पाठ भारतवासियोंको सिखाया था, उसे लोग भूल गये थे। उसके फलस्वरूप समाजका पतन हुआ और हमारा देश गुलाम बना। वह पाठ बा और बापूने अपने जीवनसे हमें एक बार फिर सिखाया।

२

पूज्य महादेवभाई

पूज्य कस्तूरबाके बाद मैं पूज्य महादेवभाईको लेती हूं। उनका दर्शन भी मेरे लिए एक विराट् दर्शन ही था।

बापूजी १९४२ के मई महीनेमें एन्ड्रूज़ फंड इकट्ठा करनेके लिए बम्बई आनेवाले थे। उन्होंने मेरे पिताजीसे तय किया था कि उसी समय मैं भी कराचीसे बम्बई पहुंच जाऊं और वहांसे उनके साथ सेवाग्राम चली जाऊं। इस योजनाके अनुसार मैं पिताजीके साथ बम्बई आई। पिताजी मुझे सीधे बापूके निवास-स्थान बिड़ला-भवनमें ले गये। वहां पहुंचकर सबसे पहले मैंने बापूजीको प्रणाम किया, फिर महादेव काकाको।

मैं अपने परिवारसे कभी अलग नहीं हुई थी। उस समय मेरी उमर १०-१२ बरसकी ही रही होगी। सिरमें कंघी करना भी मुझे मुश्किलसे आता था। बिलकुल अबोध — दुनियाका जरा भी ज्ञान नहीं! अपनी ऐसी पुत्रीको बापूजीके पास छोड़कर पिताजी कराची लौट गये।

बिड़ला-भवन विशाल था। वहां बापूजीके पास बम्बईके गरीबों और अमीरोंका, नेताओं और कार्यकर्ताओंका तांता लगा रहता था। मैं एक कोनेमें अकेली गुमसुम बैठी थी। शाम हो गई थी। मुझे घरके लोग याद आ गये। शायद भूख भी लगी होगी, ऐसा कुछ याद आता है। बैठी बैठी

मैं रोने लगी। अपने माता-पिताकी मैं लाड़ली और छोटी लड़की थी। शायद यह खयाल भी मनमें उठा हो कि मांकी मृत्यु हो जानेसे मैं निमाई बन गयी हूं। मेरा रुदन चालू था, लेकिन इस तरह कि कोई देख न ले।

बापू शायद मान रहे होंगे कि मैं घरके बालकोंके साथ खेल रही हूं। वे अपने काममें डूबे हुए थे। महादेव काका कुछ दूर बैठकर लिख रहे थे। वहांसे एकदम कागज-कलम रखकर मेरे पास आये। पिताजी जाते समय उनसे भी मेरा ध्यान रखनेको कह गये थे। शामके भोजनका समय हो गया था। इसलिए इतने काममें डूबे होने पर भी याद रखकर वे खोजते खोजते मेरे पास आ पहुंचे। उन्हें देखते ही मैंने चुपकेसे आंखें पोंछनेकी कोशिश की। लेकिन उन्हें पता चल गया! उन्होंने एकदम मुझे बाहोंमें भरकर कहा: "रो रही है क्या, पगली? तुझे भूख लगी है न? यहां अच्छा नहीं लगता? चल, मेरे पास बैठना। मैं तुझे कहानी सुनाऊंगा। यहां अकेली क्यों बैठी है? तुझे पढ़ना है न? किताबें कहां हैं तेरी?" ऐसे अनेक प्रश्न उन्होंने एकसाथ पूछ डाले। वे प्रश्न पूछते जाते त्यों त्यों मुझे अधिक रोना आता। मां और भाई याद आने लगे। "चल, तुझे बढ़िया चीज खानेको दूंगा।" कहकर वे मुझे रसोड़ेमें खानेके लिए ले गये।

कहां अलबेली बम्बई नगरीका वातावरण और कहां मुझ जैसी अज्ञान, अबोध, भोली लड़की! किन्तु महादेव काकाके अपार वात्सल्यके कारण मैं वहां शांति और आश्वासन अनुभव करने लगी।

खा लेनेके बाद वे मेरी अंगुली पकड़कर अपने साथ ही मुझे ले गये। बिड़लाजी और उनके परिवारके लोगोंसे कहा: "यह लड़की हमारे साथ सेवाग्राम आनेवाली है। तब तक आप सब इसका खयाल रखें। अभी अकेली बैठी बैठी रो रही थी!"

बिड़लाजीकी पत्नी श्रीमती शारदाबहनने मुझे बातोंमें लगा दिया। मुझे हिन्दी नहीं आती थी। वे टूटी-फूटी गुजराती बोलती थीं। मैं भी गुजरातीमें ही बोलती थी।

रातके आठ बजे महादेव कांकाने सुबहके लिए मुझे दातुन वगैरा दे दिया। सोनेके लिए बिस्तर तो मेरे पास था ही। लेकिन वह मुझसे उठता नहीं था। इसलिए महादेव काकाने उसे उठानेमें मेरी मदद की। जब बापूजी कामसे फारिग हुए तो उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया। मुझसे बातें कीं। महादेव काकाने बापूजीसे कह दिया कि यह पगली एक कोनेमें अकेली बैठी रो रही थी! बापूजी बिस्तर पर लेटे तब मैंने उनके पैर दबाये। उन्होंने मुझे समझाया: "तुझे रोना नहीं चाहिये।" मुझ पर अपार प्रेम बरसाया। कहने लगे: "तू आज पहले ही दिन रोयी, यह मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगा। बच्चोंको तो पढ़ना चाहिये, खेलना-कूदना चाहिये, काम करना चाहिये, नया नया सीखना चाहिये और आनंद करना चाहिये। भूख लगे तब खाना चाहिये। बोल, अब तो नहीं रोयेगी न?"

अपने पास ही उन्होंने मेरा बिस्तर करवाया। बापूको सुलानेके बाद महादेव काका मुझे अपने पास ले गये। मैंने

उनके सिरमें तेल मलनेका आग्रह किया, इसलिए उन्होंने तेल मलवाया। पहले ही दिन उन्हें मेरा यह काम बहुत पसन्द आया। इसके बाद उन्होंने आग्रह करके मुझसे एक भजन गवाया। बड़े संकोचसे मैंने यह गुजराती भजन गाया: "थाके न थाके छतांये हो मानवी, न लेजे विसामो।" (हे मानव, तू थके या न थके, फिर भी तू कभी विश्राम न लेना।)

भजन सुनकर वे बोले: "तेरा कंठ मीठा है। सेवाग्राममें तू संगीत भी सीखना। वहां तेरे जैसी कई लड़कियां हैं। यहां तुझे अच्छा नहीं लगता होगा, लेकिन सेवाग्राममें तुझे बड़ा मजा आयेगा।"

इस प्रकार पहले ही दिन अपार वात्सल्य बरसाकर उन्होंने मुझे अपनी पुत्री बना लिया। रसोईका उन्हें बड़ा शौक था। मुझसे पूछा कि तुझे खानेमें क्या क्या चीज बनानी आती है। जब उन्होंने जाना कि मुझे पूरी रसोई बनाना आता है, तो उन्हें बड़ी खुशी हुई।

१९४२ की यह बात आज २० वर्ष बाद १९६२ में लिख रही हूं, फिर भी स्मरण-पट पर उस दिनका पूरा चित्र उभर आया है। उनके पास कितना काम था, कितने ही लोगोंसे उन्हें मिलना था, फिर भी मेरे जैसी कोनेमें बैठकर रोनेवाली एक छोटी लड़कीके आनंदके लिए, उसका अकेलापन मिटानेके लिए, मनपसंद बातें करके उन्होंने मेरा मन बहलाया और पिताजीकी यादको भुला दिया।

दस बजे रातको जब उन्होंने देखा कि मैं बहुत थक गई हूं, झपकियां ले रही हूं, तो प्यारसे मेरी पीठ पर हाथ

फेरते हुए बोले: "जा, अब सो जा। अब रोना नहीं, भला! सुबह मेरे पास आ जाना। मैं तुझे लिखनेका काम दूंगा। मेरा सूत तू अटेरन पर उतार देना। रातको हमें सेवाग्राम जाना है। रेलमें बैठना तुझे अच्छा लगता है न?"

इस प्रकार पहले ही दिन महादेव काकाने एकाध घंटेमें मुझे अपने वात्सल्यसे नहला दिया। मानो उसी शुभ शकुनके फलस्वरूप मुझे कस्तूरबा और बापूका अपार वात्सल्य अनुभव करनेका सौभाग्य मिला।

२३ मई, १९४२ को हम बम्बईसे सेवाग्रामके लिए रवाना हुए। महादेव काकाने देख लिया था कि मैं खानेमें शरमाती हूं। लगभग कुछ खाती ही नहीं। इसलिए दोपहरको बम्बईसे निकलनेके पहले अपने साथ बैठाकर उन्होंने मुझे जबरन् नाश्ता कराया। नाश्ता कराते कराते विनोदके लहजेमें बोले: "देख, मैं तो अहिंसक नहीं हूं। अगर तू खायेगी नहीं तो पीटूंगा तुझे।"

शामको हमें जिस मोटरमें स्टेशन जाना था उसमें बहुत भीड़ थी। दूसरी भी अनेक मोटरें जानेवाली थीं। महादेव काका यह भी जानते थे कि बापूकी वजहसे नागपुर मेलके प्लेटफार्म पर खूब भीड़ रहेगी। उस भीड़में मैं कहीं भटक न जाऊं, इस खयालसे उन्होंने मेरे लिए बापूके साथ बैठनेकी व्यवस्था कराई और मुझे उनकी लाठी बननेकी सूचना की। साथ ही बार बार मुझे हिदायत दी कि मैं बापूसे जरा भी अलग न पड़ूं। उनके ये शब्द आज भी मेरे कानोंमें गूंज रहे हैं: "बापूसे दूर तू जाना ही मत!"

२३ मई, १९४२ के दिन वहां अनेक दृष्टियोंसे मुझसे अधिक योग्य बहनें उपस्थित थीं; फिर भी महादेव काकानें मुझसे ही उस दिन बापूकी लाठी बननेका आग्रह किया। उनका यह आशीर्वाद मेरे लिए कैसी भविष्य-वाणी सिद्ध हुआ! 'हे राम' के साथ समाप्त होनेवाले जीवनके अंतिम क्षण तक बापूने अपना वह हाथ मेरे ही कंधे पर रखा। इसे दुर्भाग्य कहूं या जीवनका सौभाग्य?

बम्बईके स्टेशन पर बापूको बिदा करनेके लिए आये हुए असंख्य लोगोंके तुमुल जयघोषसे सारा स्टेशन गूंज उठा था। किसीकी आवाज दूसरे किसीको सुनाई नहीं पड़ती थी।

महादेव काकाने और मंडलीके दूसरे साथियोंने सामान डिब्बेमें जमाया। मेरे सोनेकी व्यवस्था पहले ऊपरकी बर्थ पर की गई थी, परन्तु मैं नींदमें कहीं गिर न जाऊं इस खयालसे बापूनें अपने सामनेकी बर्थ पर मेरा बिस्तर लगवाया। ट्रेन चली। रास्तेमें हमने प्रार्थना की। महादेव काकाने संतरे खानेका मुझसे खूब आग्रह किया, लेकिन मैंने नहीं खाये। उन्होंने बापूसे मेरी शिकायत की कि यह लड़की कुछ खाती ही नहीं। बापूने भी मुझे मीठा उलाहना दिया। फिर दोनोंके बीच बात हुई कि सेवाग्राम पहुंचने पर बा इसे रास्ते पर ले आयेंगी।

मैंने बापूके पांव दबाये। वे सो गये। महादेव काका कुछ लिखते रहे। मैं देखती रही। अपनी डायरी लिख लेनेके बाद मुझसे कहने लगे: "आश्रम जाकर तू भी ऐसी डायरी लिखना सीख लेना। मैं तुझे अच्छी तरह तैयार कर दूंगा।"

चलती गाड़ीमें जब मुझे नींदके झोंके आने लगे, तो उन्होंने बड़े प्यारसे मेरा सिर तकिये पर रख दिया।

मेरी देखरेखकी सारी जिम्मेदारी अपने सिर लेकर महादेव काकाने बापूजीका काम कितना हलका बना दिया? अगर उन्होंने इस तरह मुझे संभाल न लिया होता, तो बापूजीको मेरी छोटी-बड़ी हर बातकी चिन्ता बनी रहती। महादेव काका रात-दिनका भेद किये बिना बापूकी छोटीसे छोटी शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक या सामाजिक जरूरतोंका ध्यान रखते थे। उसमें मेरे जैसी एक बुद्धू लड़कीकी देखभालकी जिम्मेदारी और बढ़ गई। परन्तु महादेव काकाने उसे प्रसन्नतासे उठाकर मुझ पर अपार वात्सल्य बरसाया। वह सब मेरे लिए एक पवित्र स्मृति बन कर हृदय पर अंकित हो गया है।

डायरी लिखनेका पहला सबक उन्होंने मुझे ट्रेनमें सिखाया। किसी तारीख और वारको अमुक समय अमुक स्थान पर क्या किया, यह लिखना सिखाया। मनमें आये हुए विचार, की हुई गलतियां, किया हुआ कार्य—इन सबको डायरीमें कैसे लिखा जाय, यह समझाया। उस समय कौन जानता था कि महादेव काकाका यह पहला पाठ आज मेरे जीवनमें साकार बनकर अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगा? कुदरतका वह कैसा संकेत था!

२४ मईको दिनके साढ़े ग्यारह बजे हम सेवाग्राम पहुंचे। मैं काकाकी पत्नी दुर्गा मौसीके पास पहुंची तब लगभग तीन बजे थे। इतनी देरसे गई इसलिए महादेव काकाने मीठी

नाराजी बताई : "बस, आज सखियां और मौसियां मिल गईं, इसलिए काकाको भुला दिया न?"

रातमें लगभग रोज ही मैं महादेव काकाके सिरमें तेल मलने जाती थी। बहुत बार वे मुझसे भजन गवाते थे। कुछ न कुछ लिखवाते और पढ़वाते भी थे। वे मुझे मनु नामसे कभी नहीं पुकारते थे। मेरा नाम उन्होंने 'मीनी' (बिल्ली) रख दिया था। नारायणभाई मुझे मारते-पीटते तब मैं नखरेके साथ काकाजीसे उनकी शिकायत कर देती थी। दुर्गा मौसी मोटी थीं, इसलिए वे बहुत चल-फिर नहीं सकती थीं। इस कारण उन्हें मेरे जैसी छोटी लड़कियां बहुत पसंद थीं। हम थोड़ा भी उनका काम कर देतीं, तो वे बहुत खुश हो जातीं। और सुरती गुजरातीका लाड़भरा 'पोरो' (छोकरी) शब्द बोलते बोलते हमें लाड़से कुछ न कुछ खिला भी देती थीं। लेकिन आश्रमके नियमोंसे परिचित हो जानेके कारण मैं खानेसे इनकार कर देती थी। वैसे आश्रमका भोजन मुझे भाता नहीं था; और दुबली-पतली तो मैं थी ही। इसलिए एक हफ्तेमें काफी ज्यादा दुबली हो गई। मेरा वजन घट गया। दोनों पति-पत्नीने मेरी हालत समझ ली, इसलिए महादेव काका और दुर्गा मौसी मुझसे कुछ खानेका आग्रह किया ही करते थे।

मैं उनसे कहती : "आश्रमके नियमके अनुसार मैं आपके यहां कुछ नहीं खा सकती। बापूजी नाराज हुए तो?"

इससे अधिक आश्रमके नियमोंके पीछे रहे कारणोंकी उस समय मुझे समझ नहीं थी। परन्तु एक बातको मैंने

दृढ़तासे पकड़ लिया था : 'जो बात बापूजी या बाको अच्छी न लगे वह न की जाय।' यह मंत्र मुझे पिताजीने अच्छी तरह पढ़ा दिया था।

लेकिन महादेव काका भी कुछ कम नहीं थे। मुझसे कहते : "लेकिन तू तो 'मीनी' है! तेरे लिए इस नियममें छूट रहनी चाहिये। मीनियोंके लिए कहीं कोई नियम सुने गये हैं? हमने तो इस आश्रममें ही सुने हैं। 'नरो वा कुंजरो वा' कहना तो भगवान श्रीकृष्णने भी सिखाया है।" इस प्रकार हंसी-मजाक करके वे बहुत बार मुझे कुछ न कुछ खिला देते थे। फिर बापूसे भी कह देते थे : "बापू, मीनी (बिल्ली) तो जहां चाहे वहीं खा सकती है!"

बापू जोड़ते : "लेकिन फर्क इतना है कि वह चार पैरवाली मीनी होती है और यह दो पैरवाली है।"

महादेव काका भला पीछे कैसे रहते? वे कहते : "चल मीनी, दो पैर और दो हाथसे चल कर बता दे तो देखें। फिर तो मैं भी सच्चा और बापू भी सच्चे!"

बापू विनोद करते : "देख, महादेव खिलानेके लिए तुझे जानवर बना रहे हैं! समझी?"

इस प्रकार दोनोंका विनोद चलता। महादेव काका हलके हलके सिफतसे उनके घर मेरे खानेकी बात बापूसे कह देते थे, ताकि कोई गंभीर घटना न घट जाय।

भगवानके बारेमें जब कभी सोचती हूं तो मुझे उसकी दयालुताका भी अनुभव होता है और क्रूरताका भी होता है। अभी तक मैं निश्चय नहीं कर पाई हूं कि भगवानके दयालु

होनेकी बात सच है या कठोर होनेकी। मेरे जीवनमें तो भगवान मानो तराजू लेकर निठल्ला ही बैठा रहता है! जरा भी जीवनमें सुन्दर ढंगसे मेरा काम जमा, उत्तमसे उत्तम वातावरण मुझे मिला, कि विधाताको मुझसे ईर्ष्या हुई। जीवनका यह सौभाग्य मुझसे छीन कर ही उसके हृदयको शांति मिलती है। आश्रममें बा, बापू, महादेव काका तथा दूसरे अनेक महानुभावोंके साथ रह कर मुझे खूब जानने, सीखने और पढ़नेको मिल रहा था। चरित्र-निर्माणकी उत्तम तालीम मिल रही थी। आश्रमके स्वस्थ, सुन्दर और पवित्र वातावरणमें मैं सब प्रकारसे घुलमिल गई थी। मैं पहले लिख चुकी हूं कि सख्त गरमीमें सफर करनेके बाद किसी मुसाफिरको तैयार आमोंवाली अमराई मिल जाती है, तो उसे स्वर्गका आनंद अनुभव होता है; उसी प्रकार सेवाग्राममें पहुंच कर मानो मुझे ऐसी अमराई मिल गई थी, जो मौरकी बहारके बाद आमोंसे लद गई थी। ये आम पकने ही वाले थे। मैं सोच रही थी कि ये मीठे आम खानेमें कैसा आनंद आयेगा! मेरी मांका जो प्यार ईश्वरने मुझसे छीन लिया था, उसकी पूर्ति उसने पूज्य बाके प्यारसे कर दी थी। सबके अपार प्रेम और मीठी देखरेखके नीचे मेरा सुन्दर कार्यक्रम जम गया था।

लेकिन तीन महीने भी पूरे न हुए कि अगस्तका महीना आ गया। बापूजीको अ० भा० कांग्रेस कमेटीके अधिवेशनमें बम्बई जाना पड़ा। बापूजी मानते थे कि वे एक सप्ताहमें सेवाग्राम लौट आयेंगे, इसलिए बाके भी उनके साथ आनेकी जरूरत नहीं। बा ऐसी बातोंमें कभी जिद नहीं करती थीं।

लेकिन उस दिन जैसे भावीने उनके मनमें पैठ कर भविष्य-वाणी कर दी कि बापू बम्बईसे लौटेंगे नहीं। उन्होंने बापूसे कहा: "भले ही आप दो दिनमें लौट आयें, फिर भी मैं आपके साथ चलूंगी। जहां आप वहां मैं। आपका ही भरोसा सच्चा।..." फिर अपने स्वभावके अनुसार हंसते हंसते बोलीं: "आप सरकारके साथ सीधे थोड़े ही रहनेवाले हैं। कुछ तो उत्पात करेंगे ही!"

सब कोई जोरसे हंस पड़े। बाको अपने साथ आनेकी इजाजत बापूको देनी पड़ी।

जुलाईमें नेतागण बापूसे मिलने सेवाग्राम आये थे। कांग्रेस वर्किंग कमेटीकी मीटिंग सेवाग्राममें ही हुई। लेकिन बा शायद ही किसीसे कुछ पूछती थीं। नेताओंका चाय-नाश्ता करीब करीब महादेव काकाके घर ही होता। सवेरे वे बापूके मेहमान बनते, दोपहरको महादेव काकाके। महादेव काका कांग्रेसके नेताओं और बापूजीके बीच कड़ीका काम करते थे। वे बापूको भी सच्ची बातोंसे परिचित करते थे और नेताओंको भी। इससे देशको बड़ा लाभ होता था।

इस बार मुझे बम्बई न ले जानेका फैसला हुआ। बापूने मुझे समझाया: "बेकार गाड़ीभाड़ा क्यों खर्च किया जाय? बा तो अब माननेवाली नहीं है। इसलिए उसे ले ही जाना पड़ेगा। लेकिन तुझे अपनी पढ़ाई नहीं बिगाड़नी चाहिये। आठ दिनमें तो हम लौट ही आयेंगे!"

लेकिन इस बार महादेव काकाकी मनस्थिति मुझे कुछ दूसरी ही लगती थी। बापूने एक हफ्तेमें लौटनेकी बात पर

जोर दिया था। लेकिन महादेव काकाको मानो भावीका पता चल गया। वे बापूकी इस बातसे सहमत नहीं हुए।

अंतमें बिदाईके समय मैं महादेव काकाको प्रणाम करने गई। सामान्यतः महादेव काका अपने स्वभावके अनुसार या तो मेरी चोटी पकड़ते, या कान पकड़ते थे। और कुछ न करें तो मीठी चपत ही लगा देते थे। लेकिन आज बिदाईके समय कुछ गंभीर बन कर बोले : "अच्छा तो मीनी, जाता हूं। भगवान ही जानता है कि अब हमारी भेंट होगी या नहीं।" कभी कभी आदमीके मुंहसे सच्ची बात निकल जाती है। महादेव काकाके बारेमें भी यही हुआ। मैं रो पड़ी। मैंने कहा : "आप सब जेलमें जायंगे न? मैं भी जाऊंगी।"

वे बोले : "तू तो छोटी लड़की है। तुझे कौन जेलमें ले जायगा? लेकिन जेलमें मीनियां — बिल्लियां बहुत होती हैं। उनमें एक तू और बढ़ जायगी।"

फिर कहने लगे : "चल, आखिर आखिरमें तू मुझे वह भजन सुना दे — 'थाके न थाके छतांये हो मानवी, न लेजे विसामो'।"

इस गुजराती भजनकी अंतिम पंक्तियां इस प्रकार थीं :

'लेजे विसामो न क्यांये, हे मानवी, देजे विसामो,
तारी हैया वरखडीने छांये, हो मानवी, देजे विसामो!'

— हे मानव, तू कहीं विश्राम न लेना; दूसरोंको विश्राम जरूर देना। हे मानव, अपने हृदय-रूपी वृक्षकी छांहमें तू थके हुए लोगोंको विश्राम देना।

इन पंक्तियोंकी भावनाके अनुसार महादेव काकाने २५ वर्षों तक बापूकी और भारत माताकी अथक सेवा की, जीवनमें कभी भी विश्राम नहीं लिया और अंतमें १५ अगस्त १९४२ के दिन बापूका काम करते करते ही एकाएक स्थायी विश्राम लेनेके लिए मृत्युकी गोदमें सो गये। सेवाग्राम फिर कभी नहीं लौटे!

उस समय 'भारत छोड़ो' आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया था। बापू आगाखां महलमें नजरबन्द थे। बापूके साथ महादेव काका थे, कस्तूरबा थीं। कुछ और साथी भी थे। महादेव काका बापूके दाहिने हाथ थे — उनके श्वास जैसे थे। जेलमें महादेव काकाको एक चिन्ता दिन-रात सताया करती थी: 'इस बार अगर ब्रिटिश सरकारके भयंकर दमन और अत्याचारके विरोधमें बापूने उपवास कर दिया, तो वे टिक नहीं सकेंगे। और जब बापू नहीं रहेंगे तो मेरा जीना बेकार होगा। बापूके जानेसे पहले ही अगर भगवान मुझे उठा ले और उनकी गोदमें सिर रखकर मरनेका सौभाग्य दे, तो मेरा जीवन धन्य हो जाय।' भगवानने जैसे महादेव काकाकी यह प्रार्थना सुन ली। इसी चिन्तामें घुलते घुलते १५ अगस्तको एकाएक महादेव काका बापूकी गोदमें सिर रखकर चिरनिद्रामें लीन हो गये।

स्वतंत्रता देवीकी वेदी पर एक महान, एक अमूल्य बलिदान चढ़ गया!

उस समयकी बापूकी मनस्थितिका करुण चित्र कौन प्रस्तुत कर सकता है? महादेव काकाका अग्नि-संस्कार करनेके

बाद बापू उनकी भस्म लेकर अपने कमरेमें आये और उस भस्मको सिर पर चढ़ा कर एक ही वाक्य बोले: "ईश्वर मुझे कैसी कड़ी कसौटी पर चढ़ा रहा है!"

महादेवभाईको बापू अपने पुत्रसे भी अधिक मानते थे। सुबह-शाम दोनों समय बापू उनकी समाधि पर फूल चढ़ाते और खड़े रह कर गीताके बारहवें अध्यायका पाठ करते थे। महादेवभाई बापूको अपना भगवान मानते थे। परन्तु भगवान भी अपने भक्तके अधीन रहते हैं! बापूके आचरणमें इस भावनाका साकार रूप देखनेको मिलता था। बापूको अलौकिक प्रेम और भक्तिसे समाधि पर फूल जमाते देखकर और आंखें बंद करके भक्तियोगका पाठ करते देख कर मेरा मन प्रश्न करता: "दोनोंमें से कौन किसका भक्त है?"

इसके बाद बापूको जेलमें एक और इतना ही बड़ा आघात लगा। २२ फरवरी १९४४ को महाशिवरात्रिकी संध्यामें कस्तूरबा भी बापूकी गोदमें ही सिर रख कर चिरनिद्रामें लीन हो गईं।

स्वतंत्रता देवीकी बलिवेदी पर यह दूसरा महान और अमूल्य बलिदान था!

अंतमें, ६ मई १९४४ को अंग्रेज सरकारने बापूको बीमारीकी वजहसे जेलमुक्त कर दिया। दो महान बलिदानोंके बाद अब बापूके बलिदानका खतरा उठानेका साहस विदेशी सरकारमें नहीं था।

बापूके साथ हम सब भी छूट गये। आगाखां महल छोड़नेसे पहले बापूने अतिशय कमजोरी होते हुए भी

कस्तूरबा और महादेवभाईकी समाधि पर जाकर अंतिम बार फूल चढ़ाये और खड़े खड़े नत-मस्तक होकर संपूर्ण प्रार्थना की।

और, बा तथा महादेवभाई जैसे पुण्यात्माओंके बलिदानके प्रतापसे 'भारत छोड़ो' की वह लड़ाई अंतिम सिद्ध हुई। १५ अगस्त (१९४७) के दिन ही भारत माताकी १५० वर्षकी गुलामीकी जंजीरें टूटीं ! विधिकी यह कैसी रचना थी?

जीवनके अंतिम वर्षोंमें बापूकी कड़ी परीक्षा हुई। आजादीके बाद तो बापूको महादेवभाई और कस्तूरबाका अभाव प्रतिक्षण खटकता था। यह क्षति सिर्फ बापूकी ही नहीं थी। देशकी समग्र जनता तथा नेताओंने भी इस क्षतिका अनुभव किया था।

एक दिन भी ऐसा न जाता जब मेरी डायरीकी जांच करते समय बापू महादेवभाईका स्मरण न करते हों। जीवनके अंतिम दिन, ३० जनवरी १९४८ के दिन भी बापूने यह चिन्ता प्रकट की थी कि मैं महादेवकी जीवन-कथा नहीं लिख सका हूं और उसकी डायरियोंका साहित्य भी प्रकाशित नहीं कर पाया हूं। बापूने एक बार कहा था: "महादेवकी मृत्यु एक देशभक्त और योगीकी मृत्यु थी!"

ऐसे योगीको हम नत-मस्तक होकर प्रणाम करें और ईश्वरसे यही प्रार्थना करें:

'तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय।'

अपने लेखों, रचनाओं और डायरियों द्वारा महादेवभाईने हमारा जो मार्गदर्शन किया था वही गांधीकथा, गांधी-

युग और गांधी-साहित्यकी अमर विरासत हमारे पास रह गई है ।

३

विनम्र पूज्य किशोरलालभाई मशरूवाला

बापूके विशाल वटवृक्षकी अनेक शाखायें थीं और वे भी उतनी ही शीतल थीं । पूज्य किशोरलालभाई ऐसी ही एक शीतल शाखा थे ।

किशोरलालभाईको नामसे तो मैं खूब जानती थी। गांधी-परिवारके साथ उनका बहुत ही निकटका सम्बन्ध था। देशके उज्ज्वल भविष्यका विचार करके बापूने किशोरलालभाई जैसे आध्यात्मिक पुरुषोंका भी संग्रह किया था । अपनी विशाल दृष्टिसे उन्होंने देख लिया था कि भारत अन्य देशोंसे बिलकुल निराला है । केवल अच्छा राज्य चलानेसे यह देश सुखी नहीं होगा । इस देशको सुखी बनानेके लिए राजनीतिक पुरुषोंके साथ आध्यात्मिक तथा संत पुरुषोंकी भी जरूरत रहेगी । इसलिए एक ओर यदि बापूने राजनीतिक सेना खड़ी की, तो दूसरी ओर आध्यात्मिक और रचनात्मक सेना भी खड़ी की । इस आध्यात्मिक सेनाके एक वफादार साथी थे पूज्य किशोरलालभाई । इन सब साथियोंकी दृष्टिमें बापू पूज्यसे भी अधिक थे । परन्तु बापूने सबके सामने यह सिद्धान्त रखा था : "हम सब एक ही नावके नाविक हैं । जो नाव मंझधारमें

फंसी है, उसे हमें पार लगाना है। इसका आधार केवल कर्णधार पर ही न रखा जाय। इसमें हम सबको अपनी अपनी बुद्धि-शक्तिका उपयोग करके नावको सही-सलामत पार लगानेमें मदद करनी चाहिये।" वे अपने साथियोंसे कहते थे: "कोई बड़ा नहीं है और कोई छोटा नहीं है। हम सब एक ही क्षेत्रके साथी हैं।" बापूकी यही खूबी थी। वे गुणग्राही थे। न तो उन्होंने संप्रदाय खड़ा किया, न शिष्य बनाये। सभी गुरु थे, और सभी शिष्य थे। और इसी उदार वृत्तिमें बापूके विराट् स्वरूपके दर्शन होते थे।

पूज्य किशोरलालभाईसे मैं थोड़ी दूर भी थी, क्योंकि उनके लेखों या पुस्तकोंकी भाषा मैं समझ नहीं पाती थी। परन्तु जब कभी मैं उनके सामने पड़ जाती तब वे और गोमती काकी बड़े वात्सल्यसे मेरे सारे हालचाल पूछते थे।

१९४२ में अंग्रेज सरकारने बापूजी और बाको गिरफ्तार कर लिया और जेलमें महादेव काकाका एकाएक स्वर्गवास हो गया। इसलिए आश्रमकी सारी जिम्मेदारी पूज्य किशोरलाल काकाके कंधों पर आ पड़ी। आश्रमकी बातोंकी बारीकसे बारीक देखरेख करते करते एक दिन मेरी बारी भी आई: "तू इस समय आश्रममें सबसे छोटी है; और इस बार सरकार आश्रमवासियोंके साथ कैसा व्यवहार करेगी कुछ कहा नहीं जा सकता। मैंने सुना है कि तू जेल जाना चाहती है। लेकिन तेरे जैसी छोटी बच्चीको जेलमें कैसे जाने दिया जाय? फिर तेरे भाई (पिताजी) की इजाजत लेना भी जरूरी है। मेरी राय तो यह है कि तुझे अच्छा साथ ढूंढ़ कर बम्बई

भेज दिया जाय। इस बार सरकारी आदमी लड़कियोंके साथ गुंडागिरी भी करें तो आश्चर्य नहीं !"

यह सुन कर मैंने कहा : "काका, मुझे तो जेल जाना ही है। आप कहें तो मैं कराची फोन करके भाईकी इजाजत ले लूं।"

उन्होंने मुझे खूब समझाया : "यह तेरे जैसी छोकरियोंके बूतेका काम नहीं है। और एक बार इसमें कूदनेके बाद अगर माफी मांग कर तू पीछे हटी, तो उससे मुझे और दूसरे सब लोगोंको बहुत दुःख होगा। तू बच्ची ठहरी; जोशमें आ सकती है। लेकिन मुझे तो गहरा विचार करना चाहिये न ?"

किशोरलालभाईने बरसोंसे वकालत नहीं की होगी, फिर भी एक कुशल वकीलकी तरह उन्होंने मुझसे खूब जिरह की। अंतमें जब उन्होंने मेरा दृढ़ निश्चय देखा, तो कराची फोन करके पिताजीसे इस बारेमें पूछनेकी इजाजत दे दी। ट्रंक-कॉल जोड़नेका ज्ञान उस उमरमें मुझे नहीं था, इसलिए समूची व्यवस्था उन्होंने स्वयं ही कर दी। पिताजीने फोन पर मुझसे बात की और अंतमें किशोरलाल काकाका आदेश माननेका ही आग्रह दिखाया। उन्होंने खुद भी मेरे पिताजीसे बात की, जिसे सुनकर मुझे बड़ा आनंद हुआ। मुझसे बात करते समय तो उन्होंने मुझसे खूब जिरह की, लेकिन पिताजीके साथ इस ढंगसे बात की मानो मेरा समर्थन कर रहे हों : "मनु तो दृढ़ है और जेलमें जानेके लिए अत्यंत अधीर बन गई है। मुझे लगता है कि जेल जानेसे कुल मिलाकर उसकी प्रगति होगी—उसे लाभ होगा।"

हमारे शास्त्र कहते हैं कि संतों तथा ऋषि-मुनियोंके आशीर्वाद या शाप निष्फल नहीं जाते। मेरे लिए तो इस संत पुरुषके मुखसे निकले हुए आशीर्वादपूर्ण वचन जीवनका इतिहास निर्माण करनेवाले सिद्ध हुए। मैं जेल गई उसके फलस्वरूप मुझे आगाखां महलमें जानेका सौभाग्य मिला। अंतिम क्षण तक कस्तूरबाकी सेवा करनेका परम पवित्र अवसर भी प्राप्त हुआ। साथ ही, बापूके समान एक महान गुरुसे शिक्षा ग्रहण करने तथा उनकी छत्रछायामें रहनेका सद्भाग्य भी मिला। इस प्रकारके आशीर्वचनोंके बिना मेरे जैसी अज्ञान बालिकाको इतना बड़ा सौभाग्य जीवनमें मिल ही नहीं सकता था।

२२ अगस्त १९४२ के दिन एकाएक एक मोटर पुलिसके बीसेक जवानोंको लेकर आश्रममें आई। जब पुलिस आश्रममें आये या दूसरी तरहसे वातावरणमें तनाव आये तब 'खतरेकी घंटी' बजानेका काम मुझे सौंपा गया था। पुलिसको देखकर मैंने तुरन्त घंटी बजाई। वे लोग सीधे किशोरलाल काकाके मकान पर पहुंचे। रातके करीब डेढ़-दो बजे होंगे। किशोर-लाल काकाके घरका दरवाजा हमेशा खुला ही रहता था। घंटीकी आवाज सुनकर पुलिसके जवानोंने अपनी बंदूकें थोड़ी तान लीं। लेकिन आखिर तो वे लोग हिन्दुस्तानी ही थे। उन्होंने भक्तिभावसे पूछा: "कोई उपद्रव तो नहीं करेंगे न?" आश्रमके व्यवस्थापकने दृढ़तासे 'ना' कहा।

जीवनमें पहली ही बार मैंने यमदूत जैसे पुलिसके जवानोंको देखा। लेकिन मुझे भी जेलमें जाना था, इसलिए

मैं इस बातकी सावधानी बरत रही थी कि कोई मेरे मनके भयको ताड़ न ले ।

पुलिसने घरकी तलाशी शुरू कर दी । कोई आपत्ति-जनक चीज या साहित्य उसके हाथ नहीं लगा । लगता भी कैसे ? किशोरलालभाई तो संत महात्मा थे । पुलिसके सामने सवाल खड़ा हुआ : "इन्हें पकड़ा कैसे जाय ?"

अंतमें पुलिस अधिकारीने उनसे एक कागज पर दस्तखत करनेको कहा । किशोरलालभाईने इनकार कर दिया । अधि-कारीको उन्हें पकड़नेका बहाना मिल गया । उसने इसी कारणको लेकर वारंट निकाला और आधे ही घंटेमें किशोर-लालभाई तैयार हो गये ।

उन्हें बिदा करते समय सब आश्रमवासियोंने मिल कर प्रार्थना की । सबके हृदय जैसे टूट गये थे। प्रातः साढ़े तीनका समय था । किशोरलालभाईके सामानमें केवल पूनीका एक बंडल और एक चरखा था। न तो उन्होंने कोई बिस्तर साथ लिया और न कोई कपड़े लिये । सिर्फ ओढ़नेके लिए एक शाल भर ली । मुट्ठीभर हड्डियोंवाले मानव-शरीरमें बसी हुई उनकी तेजस्वी और दृढ़निश्चयी आत्माके दर्शनका वह अवसर मेरे जीवनका एक अनुपम अवसर था । किशोरलालभाईने सब लोगोंको आवश्यक सलाह और सूचनायें दीं । मैंने श्रद्धासे उन्हें प्रणाम किया । उन्होंने हृदयसे आशीर्वाद देकर मुझे सावधान किया : "अपने निश्चय पर दृढ़तासे डटे रहना । कभी पीछे न हटना ।"

जो कोई किशोरलालभाईके निकट आता, उसके लिए वे आश्रय-स्थान बन जाते थे। बापू और किशोरलाल काकाके बीच पिता-पुत्र अथवा गुरु-शिष्य जैसा निकट सम्बन्ध था। दोनोंके बीच विचारोंका आदान-प्रदान तो होता ही था, परन्तु पत्र-व्यवहार भी खूब चलता था। इसके बावजूद दोनोंका विराट् स्वरूप कैसा अद्भुत था, इसकी छोटीसी झांकी बापूके लिखे एक पत्रसे हमें मिलती है। बापूने अनेक पत्र उनके नाम मुझसे लिखवाये थे। उनमें से ता० २०–२–'४७ का नोआखालीसे लिखवाया यह पत्र देखिये:

चि० किशोरलाल,

तुम्हारा ता० १२–२–'४७ का पत्र आज मिला। जवाब तो मेरे पास एक-एक पैरेग्राफका है, लेकिन न तो मुझमें इतना उत्साह है और न मेरे पास इतना समय है। फिर भी अन्याय न हो इस खयालसे इतना लिखता हूं कि अविवेक तो दोनोंमें से एकने भी नहीं किया है। यदि हुआ हो तो मुझसे ही हुआ है। लेकिन इसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता। सारा प्रकरण यदि मैं यहां लिख दूं, तो मैं भी मिथ्या आरोपसे मुक्त हो जाऊं। तुम्हारी लिखी कुछ बातें तो ऐसी हैं, जिनका मुझे पता भी नहीं है। . . . किन्तु मेरा अंतः-करण बिलकुल स्पष्ट है, ऐसा भी नहीं। कदाचित् मैं गलती कर रहा होऊं तो? लेकिन ऐसी शंका रखने लगूं, तो मेरे अनेक काम रुक जायें। इसलिए रामसे निरंतर प्रार्थना करता हूं कि वह मुझे सीधा रास्ता

बताये। तुम्हारे पत्रमें कभी अविवेक नहीं हो सकता, तब उसमें मेरे हृदयको चुभनेवाली बात तो हो ही कैसे सकती है? लेकिन मेरे अंतरमें जो कुछ भी चलता हो उसे बाहरी वाणी देनेवाले तुम सब बनो, यह मेरी इच्छा है। तुम मेरे वचनोंमें जो जो विरोध दिखाते हो, वह निरा आभास है। इतना मैं कह दूं कि समय इस सम्बन्धमें अपना काम करेगा।

तुम बीमारीको छोड़ते नहीं, इसका कारण तुम्हारा जिद्दीपन है, ऐसा मुझे कहने दोगे? मैं तो अभी भी तुमसे अनुरोध करता हूं कि तुम पूना जाओ और डॉ० दिनशा महेता कहें वैसा करो। कलकत्तेमें एक प्राकृतिक उपचार करनेवालेका पता चला है। मेरी आंखें उस पर टिकी हैं। मैंने एक माह पहले तुम्हारा नाम भी उसके सामने रखा था। उसने तुम्हें अपने उपचार-गृहमें लेना स्वीकार भी कर लिया था। लेकिन तुम्हें मैंने लिखा नहीं। हिम्मत कच्ची थी इसलिए। इससे सोचा कि पहले शारदाको वहां रखूं और वह अच्छी हो जाय, तो फिर तुम्हें लिखनेकी हिम्मत करूं। शारदा नहीं आ सकी, क्योंकि गोरधनदासको मेरी सूचना पसंद नहीं आई। लेकिन तुम यदि कलकत्ता जाओ, तो उस डॉक्टरके यहां तुम्हें रखा जा सकता है। मैं दूसरी तरहका आदमी हूं, ऐसा यदि लोग मेरे बारेमें समझ सकें तो वह मुझे पसंद होगा।

बापूके आशीर्वाद

इसी प्रकारके एक दूसरे पत्रमें बापूने उन्हें लिखवाया था :

"तुम्हारा पत्र मिला। लिखनेमें तुमने बहुत मेहनत की। यह मुझे बुरा लगता है। मैं जो विचार रखता हूं उन्हें तुम्हारे बताये ढंगसे व्यक्त करना नहीं चाहता। मुझे जल्दी नहीं है; फुरसत भी नहीं है। वे जैसे हैं उसी रूपमें उन्हें रहने देना नहीं चाहता। परन्तु मरनेसे पहले यदि उन्हें प्रकट न कर सकूं, तो संसार कुछ खोयेगा या मैं कुछ खोऊंगा, ऐसा मैं नहीं मानता। पुनर्जन्ममें मेरा विश्वास है। इस जन्ममें जो सुधरना रह गया होगा, वह दूसरे जन्ममें सुधर जायगा। इस जन्ममें पूरा प्रयत्न करनेकी बात मैं स्वीकार करता हूं। अनेक जन्म हैं इसलिए आलस्य करनेकी बातको मैं गलत मानता हूं।

"अगर मैं तुम्हें पसन्द न आनेवाला आचरण करूं, तो अब तुम उसे बरदाश्त नहीं कर सकोगे — यह वचन वापिस लेने जैसा है। मैं अगर झूठ बोलूं, तो तुम्हें आघात नहीं लगेगा? मैं अगर मनुष्य-हत्या करूं तो? इस विचारमें तुम्हें दोष नहीं मालूम होता? जो भी हो, मैं इस दिशामें कोई भी कदम जल्दीमें नहीं उठाऊंगा। . . .

"हमारे बीचकी इस चर्चाको मैं अपनी इच्छाके कारण बंद नहीं ही करना चाहता। . . . लेकिन जब तक तुम लिखते रहोगे तब तक मैं भी आनंदसे लिखता रहूंगा। इससे भी तुम्हें कुछ संतोष दे सकूं

तो मुझे अच्छा लगेगा। तुम सब साथियोंकी मुझे जरूरत है।

बापूके आशीर्वाद"

इस प्रकार असंख्य विषयों पर दोनोंके बीच विचारोंका आदान-प्रदान खुले दिलसे होता था और मननीय चर्चायें भी होती रहती थीं। किशोरलालभाईके नाम बापूका अंतिम पत्र इस प्रकार था:

बिड़ला हाउस,
नई दिल्ली
२९-१-'४८

चि० किशोरलाल,

आजका प्रार्थनाके बादका समय पत्र लिखनेमें लगा रहा हूं। शंकरकी पुत्रीकी मृत्युके समाचार तुमने भेजे यह अच्छा किया। मैंने उन्हें पत्र लिखा है कि मेरी वहां (सेवाग्राम) आनेकी बात अनिश्चित ही समझना। वहां मैं (फरवरीकी) ३ से १२ तारीख तक रहनेकी बात चला रहा हूं। दिल्लीमें मैंने 'किया' ऐसा कहा जा सके, तो फिर प्रतिज्ञा-पालनके लिए यहां मेरे रहनेकी जरूरत न रह जाय। इसका आधार यहांके साथियों पर है। कल शायद इस सम्बन्धमें निश्चय किया जा सकेगा। वहां मेरे आनेके दो उद्देश्य हैं: रचनात्मक कार्य करनेवाली सब संस्थायें मिल सकती हैं या नहीं, इस पर विचार करना; और जमनालालजीकी

पुण्यतिथिके अवसर पर हाजिर रहना । मुझमें काफी शक्ति आ रही है । इस बारके मेरे उपवासमें किडनी और लीवर दोनों ही बिगड़े हैं । मेरी दृष्टिसे यह रामनाममें मेरी श्रद्धाकी कमीकी निशानी है ।

बापूके आशीर्वाद

यह पत्र लिखनेके बाद चौबीस घंटोंमें ही प्रभुने बापूको उठा लिया ! उसके बाद हमारे जैसे अनेक लोगोंको संभालने-की जिम्मेदारी और कर्तव्यका भार किशोरलालभाईके कंधों पर आ पड़ा । ता० ११–५–'४८ के मेरे पत्रके उत्तरमें उन्होंने मुझे लिखा :

"थोड़े दिन तक तो किसीको भी पत्र लिखनेकी वृत्ति मुझमें नहीं रही । कितने ही दिनों तक किसीको भी धीरज बंधानेवाला पत्र लिखनेकी मेरी हिम्मत नहीं हुई । अपनी स्थितिको मैं जानता था । तब दूसरोंको झूठा दिलासा कैसे देता ? कितने ही लोगोंने पत्रकी मांग की । हरएकको मैंने इतना ही लिखा कि मैं पत्र लिखनेकी स्थितिमें नहीं हूं । तेरा विस्तृत पत्र पढ़कर खुशी हुई । आजकल तू क्या करती है ? तेरे लिए एक काम करने जैसा है । तू लम्बे समय तक बापूजी और बाके साथ रही थी । इस सहवासके ऐसे संस्मरण तू लिख डाल, जो जनताके लिए उपयोगी और बोधप्रद सिद्ध हों । यह बड़ा उपयोगी काम होगा ।"

इस प्रकार उन्होंने मुझे संस्मरण लिखनेका प्रोत्साहन दिया। लेकिन मेरे भीतर यह विश्वास नहीं था कि मैं ऐसे संस्मरण लिख सकूंगी। फिर भी मैंने कुछ संस्मरण लिखकर उनके पास भेजे। उन्हें पढ़कर उन्होंने मुझे लिखा: "तेरी दैनिक डायरी मैं पढ़ गया। बहुत सुन्दर लिखी है। इसके लिए तुझे हार्दिक अभिनन्दन!"

किशोरलालभाईके इस पत्रके बाद मेरी हिम्मत बढ़ी। मैंने जो कुछ लिखा था उस पर उनका ध्यान गया। उस समय उनकी तबीयत बहुत खराब थी। सर हरकिसनदास अस्पतालमें मैं उनसे मिलने गई। मेरी फाइल उन्होंने अपने दुर्बल हाथोंमें ले ली। वे अत्यंत खिन्न और उदास हो गये। शायद उन्हें बापूके साथ अपने अति निकट सम्बन्धका स्मरण हो आया। बापूके शोकने उनके समान धीर-गंभीर पुरुषको भी कुछ क्षणके लिए विषाद-ग्रस्त बना दिया।

अंतमें उनके मार्गदर्शनमें मैंने अपनी शक्तिके अनुसार लिखना शुरू किया। उन्होंने मेरी प्रथम पुस्तिका 'बापू — मेरी मां' गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजीमें एक साथ प्रकाशित करवा कर मुझे लिखा। पुस्तिकाका नाम भी उन्हींने खोजा और रखा। नामके विषयमें मुझे लिखा: "पुस्तिकाका यह नाम तुझे जरूर पसंद आयेगा; इससे तुझे संतोष होगा। मैं अपने दुःखका इस तरह प्रायश्चित्त करनेका प्रयत्न करता हूं।" तबीयत कमजोर होते हुए भी मेरी डायरियोंको पढ़ने और सुधारनेमें उन्होंने खूब परिश्रम किया। एक पत्रमें मुझे लिखा: "तेरी डायरियां मैं पढ़ रहा हूं। पूज्य बापूजीने

तुझसे जो आशायें रखी हैं, उन्हें सफल करनेकी शक्ति भगवान तुझे दे!"

बापूजीके प्रति अगाध भक्ति होनेके कारण किशोरलालभाई इस बातकी हमेशा सावधानी रखते थे कि गांधीजी तथा गांधीवाद पर अनेक लेखक जो लेख और पुस्तकें लिखते हैं, उनमें कोई त्रुटि या दोष न रहने पाये। कभी कभी कोई लेखक गांधीजी या गांधीवादके साथ अन्याय कर बैठते थे। लेकिन किशोरलालभाई जब तक जीवित रहे तब तक इस बारेमें खूब सावधानी बरतते रहे। साथ ही, वे इस बातकी भी सतत सावधानी रखते थे कि लेखकोंके साथ किसी प्रकारका अन्याय न हो। ऐसी एक पुस्तक उन्होंने एक पत्रके साथ मेरे पास भेजी थी। उन्होंने अनेक वात्सल्यपूर्ण पत्र मुझे लिखे थे, परन्तु यह पत्र उनका अंतिम पत्र बन गया। इस पत्रसे उनकी महानता प्रकट होती है। वे बापूके अनन्य भक्त थे, फिर भी इस बातकी सदा सावधानी रखते थे कि इस भक्तिके कारण दूसरोंके साथ भूलमें भी अन्याय न हो जाय। उनका अंतिम पत्र इस प्रकार था:

चि० मनु,

बहुत समयसे तेरे कोई समाचार नहीं मिले। तबीयत कैसी है? ऊपरकी रचना मैं तेरे देखनेके लिए भेज रहा हूं। . . . यह दिसम्बर १९४७ या जनवरी १९४८की बात होगी। तेरी डायरीमें इसका कोई उल्लेख है? . . .ने इस बातको जिस ढंगसे रखा है, उसमें कोई अत्युक्ति तो नहीं है? मुझे लगता

है कि जिस ढंगसे यह बात रखी गई है उस तरह बापू बोले नहीं होंगे। अपनी डायरीमें देखकर तू इस बारेमें मुझे बतायेगी?

आजकल तू क्या कर रही है? तेरा वजन कितना है? जयसुखलालभाई अच्छे होंगे? उन्हें मेरा प्रणाम। काशीबहनकी तबीयत संतोषजनक नहीं कही जा सकती। रामदासभाई इस समय सेवाग्राममें रहते हैं। मेरी तबीयत बहुत अच्छी नहीं है। तू 'हरिजन' पत्रोंकी जिम्मेदारी उठानेको तैयार हो सकती है?

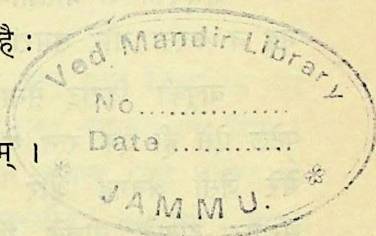
किशोरलालके आशीर्वाद

अपनी भाभीके स्वर्गवासका उल्लेख करके एक पत्रमें उन्होंने मुझे लिखा था: "अब अपने परिवारमें मैं ही यम-पुरी जानेके लिए सबसे आगे हूं। 'क्यू'में खड़ा हूं। प्रसन्न मुखसे सुन्दर मरण-मित्रकी प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

संतोंकी मृत्यु उनकी इच्छानुसार ही होती है। पूज्य महादेव काका, पूज्य कस्तूरबा, पूज्य बापू और पूज्य किशोरलाल काका इसके उदाहरण हैं। किशोरलाल काकाने भी अंतिम क्षण तक काम करते करते ही मरण-मित्रका आलिंगन किया। ९ सितम्बर १९५२ को बापूके आध्यात्मिक पुत्रके समान किशोरलाल काकाके स्वर्गवाससे देशको तथा मेरे जैसे अनेक लोगोंको अपार व्यक्तिगत हानि पहुंची। यह क्षति कभी पूरी नहीं हो सकती।

किशोरलालभाईकी लेखन-शक्तिसे समस्त गुजरात और गुजरातसे बाहरके प्रदेश भी भलीभांति परिचित हैं । बापूके निर्वाणके बाद गांधीवाद, गांधी-विचारसरणी तथा रचनात्मक प्रवृत्तियोंको गतिशील और तेजस्वी बनाये रखनेके लिए वे जिस तरह जूझे, उसका अंदाज शायद ही कभी निकाला जा सके ।

एक सुभाषितमें कहा गया है :



रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवाः
न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं
न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीराः ।।

—देव बहुमूल्य रत्नोंसे भी संतुष्ट नहीं हुए तथा भयंकर विषसे भी वे भयभीत नहीं हुए । जब तक उन्हें अमृत नहीं मिला तब तक उन्होंने विश्राम नहीं लिया । धीर पुरुष निश्चित अर्थ प्राप्त किये बिना शांतिसे नहीं बैठते — पुरुषार्थ करते ही रहते हैं ।

पूज्य किशोरलाल काका ऐसे ही धीर पुरुष थे । उनके समान विरल विभूतिका विराट् दर्शन करके मेरे जैसे लोग जीवनकी धन्यता अनुभव करते हैं ।

४

लौह-पुरुष सरदार दादा

महाभारतमें एक श्लोक आया है:

'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम् ।'

अर्जुनकी दो प्रतिज्ञायें थीं: जीवनमें कभी दीनता अनुभव न करना और समरांगणमें कभी पीठ न दिखाना ।

बापूकी विराट् सेनाके अनेक रत्नोंमें पूज्य वल्लभभाई पटेल ऐसे ही एक रत्न थे । भारत उनका अपार ऋणी है। मेरे जैसी अनगढ़ और अज्ञानी लड़कीने भी बापू और सरदार दादाके बीचके मीठे प्रसंगों और सम्बन्धोंका दर्शन करके कृतार्थता अनुभव की है ।

बापूजी और सरदार दादाके बीच गाढ़ मित्रता थी । इतना ही नहीं, संसार यह भी जानता है कि दोनोंका पारिवारिक तथा व्यक्तिगत सम्बन्ध भी बहुत घनिष्ठ था ।

एक समय ऐसा भी था जब सरदार दादाने वकालतकी परीक्षायें पास करके सफल बैरिस्टरके रूपमें ख्याति प्राप्त की थी । उन दिनों वे बापूके साबरमती आश्रमका मजाक उड़ाया करते थे । एक बार बापू किसी क्लब (अहमदाबादका गुजरात क्लब) में सत्याग्रहकी उपयोगिता तथा उसकी विशेषता पर भाषण देने गये । सरदार दादा भाषण सुननेके बजाय ताश खेलने लग गये और उनका मजाक उड़ाते रहे । किन्तु

उसके बाद वे बापूके प्रेमसे आकर्षित होकर कभी कभी आश्रममें जाने लगे। मेरे जैसे लोग बापूके पास पहुंचते तब वे विनोदमें कहते : "इस बूढ़ेसे तो दूर रहना ही अच्छा है। भगवान जाने इसके पास कौनसा जादू या चुंबक है! लेकिन जो भी इसके पास आता है, वह इसके जालमें फंस जाता है। हम तो अपने अनुभवसे कहते हैं कि इस बूढ़ेसे तुम दूर ही रहना।"

और, धीरे धीरे वे और बापू इतने निकट आ गये कि बापूने उन्हें अपनी अहिंसक सेनाका सेनानी बना दिया। दोनोंके व्यक्तिगत और पारिवारिक सम्बन्ध इतने घनिष्ठ हो गये कि अंतमें सरदार बापूके 'चिरंजीव' बन गये। बापूने इस सम्बन्धमें उन्हें जो पत्र लिखा था वही यहां देती हूं :

१४-११-'४६

चि० वल्लभभाई,

'चि०'से शुरू किया है इसलिए काटकर 'भाई' नहीं करता। जो हैं वह हैं। . . .

सामान्यतः बापू अपने पत्रोंमें सरदारको 'भाई वल्लभभाई' लिखा करते थे।

*

२५-१२-'४६

"आपका प्यारेलालको लिखा पत्र सीधा मेरे पास आ गया। प्यारेलाल वगैरा सब अपने अपने काममें लगे हुए हैं। वे मौतके साथ खेल रहे हैं।

इसलिए जब हम सब एक ही स्थान पर थे तब यह कर सकते थे और भेज सकते थे। अब वे ऐसा नहीं कर सकते। आपका पत्र काजिरखिल गया, इसलिए सतीशबाबूने यहां मेरे पास भेज दिया। प्यारेलालको इस पत्रका पता नहीं है। वे मेरे पास आते-जाते रहते हैं। इसलिए आयेंगे तब यह पत्र पढ़ेंगे।

"यह पत्र मैं सुबह तीन बजे लिखवा रहा हूं। दातुन-पानी तो चार बजे होगा। उसके बाद प्रार्थना। इस तरह चल रहा है। ईश्वर निभायेगा तो निभूंगा। यह सब करनेके बावजूद मेरी तबीयतके बारेमें जरा भी चिन्ता रखनेकी जरूरत नहीं। शरीर काम देता है, फिर भी मेरी परीक्षा हो रही है। मोती तोलनेका जो कांटा होता है उससे भी नाजुक कांटे पर हम लोग चढ़े हुए हैं। बालका सौवां भाग करें और उस भागमें जो वजन हो उसकी भी परीक्षा जिस कांटे पर हो सके, ऐसे कांटे पर मेरी अहिंसा और मेरा सत्य दोनों चढ़े हुए हैं। ये दोनों तो अपूर्ण हो ही नहीं सकते। मैं जो उनका प्रतिनिधि बना हूं, उसकी अपूर्णता सिद्ध होनी होगी तो होगी। उस स्थितिमें इतनी तो आशा रखता हूं कि ईश्वर मुझे उठा लेगा और दूसरे किसी भी चोलेसे काम लेगा। मुझे दुःख है कि जो काम प्यारेलाल करते थे वह मैं नहीं कर सकता। और जो दो आदमी मेरे पास हैं उनसे मैं यह काम नहीं करा सका। लेकिन दोनों होशियार और सावधान हैं,

इसलिए उम्मीद है कि इसकी व्यवस्था दोनोंसे मैं करा लूंगा। इसमें आपके इस पत्रसे प्रोत्साहन मिलेगा। तीन चार दिन हुए जयसुखलाल चि० मनुको उसकी इच्छासे मेरे पास रख गये हैं। मेरे साथ रह कर मरने तककी उसकी तैयारी और अभिलाषा थी, इस-लिए उसीकी शर्त पर मैंने उसे यहां आने दिया है। इस समय मैं बिस्तर पर लेटे लेटे आंख मींचकर मनुसे यह पत्र लिखवा रहा हूं, जिससे मुझे कोई तकलीफ न हो।

"इसी कमरेमें सुचेता पड़ी है। वह तो अभी सो रही है और मैं अपनी चौकी पर लेटे हुए मनुको धीमी आवाजसे लिखा रहा हूं। यहांकी चौकी इतनी बड़ी होती है कि उस पर तीन आदमी आरामसे सो सकते हैं। मैं तो अपना सारा काम इस चौकी पर ही करता हूं।

"आपने जो तार भिजवाया है उसे निकम्मा समझिये। यहां अतिशयोक्तिका पार नहीं है। यहांके आदमी जान-बूझकर अतिशयोक्ति करते हैं, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। अतिशयोक्ति किसे कहा जाता है, यह वे जानते ही नहीं। इस प्रदेशमें वनस्पति, घासपातका कोई पार नहीं है; उसी प्रकार मनुष्यकी कल्पना यहां उड़ती है। चारों ओर नारियल और सुपारीके बड़े बड़े पेड़ खड़े हैं और उनकी छायामें ही अनेक प्रकारका घासपात, सागभाजी पैदा होती है।

नदियां सब सिन्धु, गंगा, यमुना और ब्रह्मपुत्रा जैसी हैं। वे सब अपना जल बंगालके उपसागरको अर्पण करती हैं।

"मेरी यह सलाह है कि अभी तक अगर आपने उत्तर न दिया हो तो तार भेजनेवालेको यह उत्तर दीजिये कि 'सारी बातोंका सबूत भेजो तो केन्द्रीय सरकार शायद कुछ कर सके, यद्यपि उसे कुछ करनेका अधिकार नहीं है। तुम्हारे पास गांधी है ही; वह तुम्हारे साथ न्याय न करे, ऐसा हो ही नहीं सकता। लेकिन वह सत्य और अहिंसाका पीर कहा जाता है। इसलिए उसके न्यायसे संभव है कि तुम्हें निराशा हो। लेकिन अगर गांधी तुम्हें निराश करे, तो उसके मातहत तैयार होनेवाले हम लोग तुम्हें कैसे संतोष दे सकेंगे? लेकिन हम भरसक कोशिश करेंगे। किसीसे तुम यह न कहना कि गांधी वहां है इसलिए हमें लिखनेकी जरूरत नहीं। गांधीके वहां रहते हुए भी तुम हमसे पूछ सकते हो। हमारा यह फर्ज है कि गांधीके खिलाफ जाकर भी हम लोगोंके साथ न्याय कर सकें तो करें। यह सीख भी तो हमें उसीने दी है न?'

"यहांका मामला मुश्किल है। सत्य खोजनेसे भी नहीं मिलता। अहिंसाके नाम पर हिंसा होती है। धर्मके नाम पर अधर्म चलता है। लेकिन सत्य और अहिंसाकी परीक्षा तो हिंसा और अधर्मके बीच ही हो सकती है? इस बातको मैं समझता हूं — जानता हूं,

इसीलिए यहां पड़ा हूं। यहांसे मुझे बुलाना मत। कायर बन कर मैं स्वयं भागूं, तो मेरा नसीब। अभी तक तो मैं हिन्दुस्तानके ऐसे लक्षण नहीं देखता। मुझे तो यहां रहकर करना है या मरना है। कल रेडियोके समाचार थे कि जवाहरलाल, कृपालानी और (शंकरराव) देव मुझसे सलाह-मशविरा करने आ रहे हैं। यह अच्छी बात है। सबसे मिलकर मैं क्या करूंगा? आपमें से जिन्हें कुछ पूछना हो पूछ सकते हैं। आसामके बारेमें मैंने जो कुछ लिखा है वह इसी समय प्रकाशित हो यह मैं नहीं चाहता था। लेकिन हुआ तो कैसे हुआ, यह आपको मालूम हो तो लिखिये। उसमें मैंने जो मत प्रकट किया है वही सच्चा है। इस बारेमें जरा भी शंका न रखिये। मैं तो यहां भट्टीमें पड़ा हुआ हूं। इसलिए यहां क्या चल रहा है और सत्य क्या है, इसका मैं अच्छा सबूत दे सकता हूं। . . . मेरे पास आया करता है। मेरी सलाह लिया करता है और मुझसे कहता है कि इसका पूरा पूरा पालन करूंगा। और, उसकी बात पर मेरा विश्वास जमता है। . . . का तार मुझे मिला है कि वे आपको समझा नहीं सके। लेकिन मैं समझा नहीं कि वे आपको क्या नहीं समझा सके। वे अगर वहां हों और आपसे मिलें, तो इतना उनसे कह दीजिये। और वे क्या पूछना चाहते हैं यह अगर आपकी समझमें आया हो तो मुझे बतायें।

"बिहार मुस्लिम लीगकी रिपोर्ट आपने देखी होगी। उसके बारेमें मैंने राजेन्द्रबाबूको लिखा है और कहा है कि आप सबको रिपोर्टके बारेमें मेरी राय बता दें। मुख्यमंत्री (बिहार) को भी मैंने लिखा है। रिपोर्टमें बताई गई बातोंमें से अगर आधी भी सच हों तो भयंकर हैं। मुझे जरा भी शंका नहीं कि इस मामलेमें ऐसी निष्पक्ष जांच होनी चाहिये, जिसके सामने कोई उंगली न उठा सके। उसमें जो सचाई है उसे स्वीकार कर लिया जाय और जो कुछ स्वीकार न किया जा सके उसे जांच करनेवाले न्यायाधीशके सामने रख दिया जाय। मुस्लिम लीगके मंत्री आपके साथ हैं; उनसे भी बात कीजिये। सुहरावर्दीसे मेरा पत्र-व्यवहार चल रहा है; अभी पूरा नहीं हुआ है। पूरा हो जाने पर भेजूंगा। अभी तक जो पत्र-व्यवहार हुआ है उसे जवाहर वगैरा देखेंगे। प्रार्थनाके बाद मैं जो भाषण करता हूं, उसकी संक्षिप्त रिपोर्ट अखबारोंमें जाती है। उसे यदि आप न देखते हों तो अब देखिये। अथवा चि० मणि कतरन काट कर दे तो उसे देखते रहिये। कामकी अधिकता होने पर भी कुछ काम तो करने ही पड़ते हैं। उनमें मैं जो कुछ कहूं उसे जान लेनेका काम भी आ जाता है।

"यह तो कैसे कहूं कि आपकी तबीयत अच्छी होगी? इतना मान लेता हूं कि वह काम करनेमें रुकावट नहीं डालती होगी। मैं तो अभी भी कहता हूं कि डॉ० दिनशाको बुलाकर आप अपना इलाज करा

लें। इस बारेमें मुझे शंका नहीं कि वह शुद्ध व्यक्ति है, भला है और परमार्थकी दृष्टि रखनेवाला है। योग्यता कम हो तो उससे क्या? आपने सुशीलाके बारेमें प्रश्न किया है। उसकी तबीयत बहुत अच्छी है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह भी मुश्किलोंसे भरे एक गांवमें रहती और काम करती है। यहां नीमहकीमकी भी काफी कीमत हो सकती है। तब फिर सुशीला जैसी डॉक्टरनीका तो कहना ही क्या? इसलिए यहांके किसी व्यक्तिकी चिन्ता न करें। और जहां सभी लोग मरनेके लिए आये हों वहां यदि वे बीमार पड़ें, तो भी क्या चिन्ता? मरें तो उन्हें बधाई! मैं तो चाहता हूं कि वे स्वच्छ ढंगसे मरें और बधाई प्राप्त करें।

बापूके आशीर्वाद''

ऐसे अनेक मीठे पत्रोंका आदान-प्रदान बापूजी और सरदार दादाके बीच हुआ था।

देशमें आजादी आई। परन्तु १५ अगस्तके दिन बापूजीको कौमी दंगोंकी ज्वालायें शांत करनेके लिए कलकत्तेमें रुक जाना पड़ा। यह सरदार दादाको कैसे पसंद होता? वह भी बेलिया-घाटाकी भयंकर जगहमें और सुहरावर्दी साहबकी संगतिमें जा बैठे! यह तो बापूका भड़कती आगमें कूदने जैसा काम था। इस विषयमें भारी चिन्ता प्रकट करनेवाला एक पत्र सरदार दादाने अपने हाथसे बापूको लिखा, जो इस प्रकार था:

१, औरंगजेब रोड,
नई दिल्ली,
१३–८–'४७

पूज्य बापू,

आपका पत्र मिला।

आप कलकत्तेमें रुक गये और वह भी कसाई-खाने जैसी जगहमें, गुंडोंकी गुफाओंमें जा घुसे! और फिर संगत भी कैसी? यह भारी खतरेकी बात तो मानी ही जायगी। लेकिन आपकी तबीयत यह बोझ सहन करेगी? वहां गंदगीका तो पार नहीं होगा।

चौमासा खिच गया है और चारों ओर लोग वर्षाकी पुकार मचा रहे हैं। ईश्वर जाने क्या होगा। लगता है कि बड़ा कठिन समय आयेगा। . . . बिलकुल उलटे रास्ते लग गया है। उसका अहमदाबादका भाषण नमूनेके रूपमें भेज रहा हूं। ऐसे भाषण वह रोज करता है। अगले चुनावके समय एक पार्टी खड़ी करके चुनाव लड़नेकी तैयारी कर रहा है।

राजाजी आ रहे हैं। वे नये वातावरणमें जाते हैं। कलकत्ता अगर शांत हो जाय तो अब पंजाबके सिवा देशमें सभी जगह शांति हो गई है। लाहौर और अमृतसरमें अभी तक वातावरण शांत नहीं हुआ है। बाउन्डरी (सीमा) कमीशनके निर्णयसे संभव है कि स्थिति अधिक बिगड़े। सुभाष (नेताजी) के विवाहकी बात

सच है । यह बात भी सच है कि उनकी चार बरसकी एक लड़की है । आपके कुशल समाचार लिखते रहें ।

हिन्दू राजा तो सब संघके भीतर आ गये हैं । मुसलमान राजाओंमें रामपुर, पालनपुर और दूसरे राजाओंके छोटे राज्य तो आ गये हैं । अब भोपाल, निजाम और काश्मीर बचे हैं ।

भोपालको तो हर हालतमें आना ही पड़ेगा । हैदराबादको थोड़ा समय लगेगा । लेकिन काश्मीरका क्या होता है, यह देखना है ।

काठियावाड़में अभी जूनागढ़ रह गया है । बाकी सब राज्य आ गये हैं । अब कल आखिरी दिन है । नये कानूनोंका अमल होगा । ईश्वरकी दया होगी तो अंतमें सब कुछ ठीक हो जायगा ।

सेवक

वल्लभभाईके प्रणाम

बापूने लिखा :

" . . . . राजाओंका काम इतना कठिन है कि इसे आप ही निबटा सकते हैं । लेकिन आपकी तबी-यतसे कौन निबटेगा ?

बापूके आशीर्वाद "

१ सितंबर १९४७ को कलकत्तेमें फिरसे कौमी दंगे फूट पड़े । जहां १५ अगस्तके दिन 'हिन्दू-मुस्लिम भाई भाई' के नारे लगाकर सब लोग एक-दूसरेसे गले मिले थे और शांत

सुन्दर वातावरण उत्पन्न हो गया था, वहीं फिरसे कौमी जहर फैल गया। इसके फलस्वरूप बापूजीने अनिश्चित कालका उपवास शुरू कर दिया। इस सम्बन्धमें उन्होंने वल्लभभाईको लिखा :

कलकत्ता
१-९-'४७

आज तो यहां लड़ाईकी तैयारी चल रही है। ....अभी अभी मैं घावोंसे मरे हुए मुसलमानोंके शव देखकर आ रहा हूं। सुनता हूं कि शहरमें जगह-जगह दंगा फूट पड़ा है। जो चमत्कार माना जाता था, वह तो चार दिनकी चांदनी जैसा कहा जायगा। अब मैं अपने कर्तव्यका विचार कर रहा हूं। यह पत्र लगभग ६ बजे लिखवा रहा हूं। डाक वैसे कल जायगी। इसलिए इसमें ज्यादा बातें जोड़ सकूंगा। जवाहरका तार आया है कि मैं पंजाब जाऊं। लेकिन इस स्थितिमें अब कैसे जा सकता हूं? मनके भीतर विचार कर रहा हूं। मौन इसमें मेरी मदद करता है। साथका मीरपुर खासका तार देखिये। यह भला क्या होगा? मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

२-९-'४७
सुबहके ४-४५ बजे

इतना कल शामको लिखवाया था। उसके बाद तो बहुत कुछ सुना। अनेक लोग मेरे पास आये। अपने कर्तव्यका विचार तो मैं करता ही रहता था।

उसके साथ अनेक समाचार सुननेको मिले। इसलिए मैंने उपवासका निर्णय किया। मेरा उपवास कल रात ८–१५ से शुरू हुआ है। रात राजाजी आये थे। (राजाजी उस समय बंगालके गवर्नर थे।) उन्होंने उपवास न करनेके लिए मुझसे बहुत कहा, मुझे बहुत समझाया, लेकिन उनकी एक भी दलील मेरे गले नहीं उतरी। अपना कर्तव्य मुझे स्पष्ट समझमें आ गया। आप घबरायें नहीं। दूसरे भी न घबरायें। घबरानेसे कुछ नहीं होगा। अगर यहांके नेता सच्चे होंगे तो दंगा-फसाद बंद हो जायगा और मेरा उपवास छूट जायगा। अगर यहां दंगा चलता ही रहा, तो जीकर मैं क्या करूंगा? अगर लोगोंको शांत रखनेकी शक्ति भी मुझमें न हो, तो दूसरा क्या करनेको रह जाता है? ईश्वरको यदि मेरे इस शरीरकी जरूरत होगी, तो लोगोंमें बस कर वह उन्हें शांत करेगा और मेरे शरीरको टिकायेगा। मैंने तो केवल उसीके नाम पर यह उपवास शुरू किया है।

ईश्वर आप सबको सुरक्षित रखे। इस उल्कापातमें दूसरे कुछ नहीं कर सकेंगे।

बापूके आशीर्वाद

बापूजी ऐसे पत्र मुझसे लिखवाते थे तब मैं अपने कानोंको, हाथको और अपनी पेनको भी सौभाग्यशाली मानती थी। उस समय मुझे इसकी कल्पना भी नहीं थी कि यह सत्य कुछ समय बाद केवल एक सपना बन जायगा।

बापूजीके चले जानेके बाद इस देशमें और दुनियामें हाहाकार मच गया । ३० जनवरी १९४८ का अकल्पित आघात सरदार दादाने जिस तरह सहन किया, उसमें तो सचमुच उन्हें प्राप्त हुए लौह-पुरुषके बिरुदका विराट् दर्शन सबको हुआ था । उस दिन हमारे जैसे बालक-बालिकाओंसे लेकर पंडित जवाहरलाल नेहरू तक सब कोई फूट-फूट कर रोये थे । पंडितजी तो सरदार दादाकी गोदमें सिर रख कर छोटे बच्चेकी तरह जोर-जोरसे रो रहे थे । उस समय सरदार दादाने इस कड़ी कसौटीकी सूली पर चढ़ कर भी विजय पाई थी । आंखोंसे आंसूकी एक भी बूंद गिराये बिना, पूरा संतुलन कायम रखते हुए, वे सबका प्रेमसे आलिंगन करके उन्हें आश्वासन देते थे ।

३० जनवरी १९४८ की शामको बापूजीने शरीर छोड़ा, उससे पांच ही मिनिट पहले तो उन्होंने सरदार दादाके साथ देशके भूत, वर्तमान और भविष्यके बारेमें अनेक गंभीर बातें की थीं । उन्होंने इस बातकी कल्पना भी नहीं की होगी कि दो दो उपवासोंकी अग्नि-परीक्षामें से सुरक्षित बाहर निकल आनेवाले बापू पांच ही मिनट बाद इस दुनिया-से उठ जायंगे !

जीवनमें अनेक अवसरोंका साहस और दृढ़तासे सामना करनेके कारण देशकी जनताने सरदार दादाको लौह-पुरुषका बिरुद दिया था । परन्तु बापूके इस एकाएक हो जानेवाले अवसानकी करुण घटनाने उनके साहस और दृढ़ताकी कड़ीसे कड़ी परीक्षा की होगी । बापूजीके स्वर्गवासके क्षणसे लेकर

अपने जीवनके अंतिम क्षण तक सरदार दादाने इस दारुण आघातको सहकर मेरे जैसे अनेक लोगोंको संभाला — सहारा दिया । जिन जिन लोगोंसे बापूके सम्बन्ध थे उन सबकी वे सावधानीपूर्वक निरंतर देखभाल करते रहे ।

परन्तु बापूके प्रति सरदारकी भक्ति निरी अंधभक्ति नहीं थी — हां में हां मिलानेवाली भक्ति नहीं थी । उनकी इस भक्तिमें भी फौलादी दृढ़ता थी ।

१९४७ में दिल्लीमें कौमी दंगे चल रहे थे । उन दिनों बापू दिल्लीमें ही थे । उनके पास अनेक जातियों और कौमोंके तरह तरहके लोग आया करते थे । बापूके द्वार बालक, बूढ़े, स्त्री, पुरुष, गुंडे और भक्त सभीके लिए खुले रहते थे ।

उस समय एक बार कुछ मुसलमान भाई बापूसे मिलने आये । उन्होंने सरदारके खिलाफ बापूसे शिकायत की । यह भी कहा कि हमें "रक्षण नहीं मिलता ।" बापूने उनकी बातें ध्यानसे सुनीं और सरदार दादाकी ओर देखा, जो वहीं बैठे थे ।

बात इस तरह थी । अंग्रेजी दैनिक 'डॉन' (पाकिस्तानी अखबार) की ऑफिससे रातमें गोलियां छूटती थीं । उसमें तरह तरहके हथियार थे । और बापूसे शिकायत करने जो मुसलमान आये थे उनमें से कुछ इस साजिशमें शामिल थे । यह तो 'उलटा चोर कोतवालको डाटे' वाली बात हुई । लेकिन बापूजी संत पुरुष ठहरे । वे कहते थे : "मेरे साथ धोखा करनेवाला ही अंतमें पछतायेगा ।" उनके जीवनका यह एक नियम ही बन गया था कि कोई उनके साथ धोखा करता

तो उसका प्रायश्चित्त वे खुद करते थे । वे भारतीय राष्ट्रके पिता बन गये थे । बालक यदि भूल करें, तो पिता दूसरा क्या करे ?

किन्तु सरदार दादा देशके संरक्षक थे । इसीलिए उन्हें 'सरदार'की उपाधि मिली थी । उन्हें तो सावधान रहकर चारों तरफकी खबर रखनी होती थी । उन्होंने नम्रतासे बापूको स्पष्ट कह दिया : "बापू, आपसे जो शिकायत की गई है वह बिलकुल गलत है । मेरी नीतिमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा । सोनेकी कटार कमरबंदमें खोंसनेके लिए होती है, पेटमें भोंकनेके लिए नहीं ।" यह अंतिम वाक्य सरदारने शिकायत करने आये हुए भाइयोंके सामने ही अपनी हिन्दीमें कहा । बापूको हंसी आ गई । लेकिन वे लोग बापूको प्रणाम करके चलते बने । इस छोटीसी कहावतमें सरदारने बापूजीको बहुत कुछ समझा दिया । अगर उस दिन रातको सरदारने उन लोगोंके खिलाफ उग्र कदम न उठाया होता, तो दिल्लीमें कैसी भयंकर आग भड़कती यह कहना कठिन है ।

सरदार दादाके भीतर केवल फौलादी हृदय ही नहीं था; उनके भीतर उतनी ही कोमलता भी थी । देशी राज्योंका एकीकरण उन्होंने जिस कुशलतासे किया उसमें उनके कोमल हृदयका भी दर्शन होता था । देशी राज्योंके राजाओंके साथ वे हमेशा ऐसा व्यवहार करते थे, जो उनके मान-मरतबेको शोभा दे । इतना ही नहीं, उन्होंने राजा-महाराजाओंके योग्य उच्च पदों पर उन्हें नियुक्त करके उनके त्यागकी कदर भी की ।

सब कोई जानते हैं कि सौराष्ट्रमें भावनगरके महाराजाने सबसे प्रथम त्याग किया था। उन्होंने अपनी प्रजाको सर्वस्व अर्पण कर दिया था। सरदार दादाके आदेशको मानकर उन्होंने मद्रासके राज्यपालका पद भी स्वीकार किया था। वे मद्रासके राज्यपाल थे उन्हीं दिनों भावनगर और महुवा आये थे। पूज्य बापूसे मेरा सम्बन्ध होनेके कारण वे मेरे घर भी पधारे थे। उस समय उन्होंने जो बातें कीं उनसे पूज्य बापू तथा सरदार दादाकी दीर्घ दृष्टिके प्रति उनका आदर और दोनोंके प्रति उनकी भक्ति प्रकट होती थी। उस समय महाराजाने सरदारकी तबीयतके बारेमें गहरी चिन्ता प्रकट की थी।

सरदार दादाको भी उनकी कम चिन्ता नहीं थी। मैंने जब उन्हें सारी बातें लिखीं तो पूज्य मणिबहनने उत्तर दिया: "भावनगरके महाराजा और महारानी दोनों प्रसन्न हैं, यह जानकर बापूको (सरदारको) प्रसन्नता हुई। परभाषावाले परप्रान्तमें उन्हें रखा गया है, इसलिए बापूको उनकी चिन्ता रहती है। . . ."

इस प्रसंगको जानकर संस्कृतका यह सुभाषित अपने आप हृदयसे निकल पड़ता है: 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।'

सरदार दादाका विनोदी स्वभाव तो कभी कभी बापूजीके ब्लड प्रेशरकी दवाका काम करता था। जब वे कामके असह्य बोझसे थक जाते थे या चिन्ताओंका भारी बोझ उन पर आ पड़ता था तब बहुत बार बापूजीका ब्लड प्रेशर बढ़

जाता था । परन्तु उसकी दवा थे बालक और विनोदी स्वभाववाले सरदार दादा । डॉक्टर भी चाहते थे कि दोनों एक-दूसरेके साथ प्रसन्न रहें । वे कहते थे कि सरदार और बापू रोज मिलें, तो दोनोंके लिए अच्छा है । दोनोंके बीच कोई न कोई मजाक हुए बिना रहता ही नहीं था । बापूजी कहते थे : "सरदार मरेंगे तब भी कोई न कोई मजाक करके हंसते हंसते ही मरेंगे । अपने विनोदी स्वभावके कारण ही वे टिके हुए हैं । वर्ना उनकी तबीयत ऐसी नाजुक है कि उमरमें मुझसे छोटे होते हुए भी वे मुझसे पहले चले जायें ।"

१९४७ में बापूजीको सख्त खांसी हो गई । उन्हें इन्फ्लुएन्जा हो गया था । इतनी तेज खांसी आती थी कि हमसे देखा नहीं जाता था । लेकिन प्रार्थनामें जाना तो वे कैसे छोड़ते ? एक दिन वे प्रार्थनामें जा ही रहे थे कि सरदार दादा आये । मुझसे कहने लगे : "इस बूढ़ेकी खांसीसे तो अल्लाह भी परेशान होगा कि बेकार खों-खों करता आता है और मुझे सताता है । तू भगवान और अल्लाहको समझाना ! और बापूसे कहना कि आराम करें ।" मैं बोली : "आप ही बापूसे कहिये न ।" सरदारने कहा : "लेकिन खुद भी आराम नहीं करेंगे, मैं कहने जाऊंगा तो मुझे भी शांतिसे बैठने नहीं देंगे ओर बेचारे भगवानको भी सुखसे रहने नहीं देंगे ।"

सब लोग जोरसे हंस पड़े ।

इसी अर्सेमें बापूजीकी जयंती आई । दिल्लीके गुजराती नागरिक बापूको एक थैली अर्पण करना चाहते थे । सरदार

दादाको भी निमंत्रण मिला था। इस कार्यक्रमका समय तीन बजेका था। खांसी तो बापूकी वैसी ही थी। सरदारने बापूसे कहा: "इतनी खांसी आती है तो भी आपने गुजरातियोंकी सभामें जाना क्यों कबूल किया? लेकिन आप तो इतने लालची और लोभी हैं कि अगर सुनें कि फलां जगहसे राहत-फंडके लिए थैली मिलेगी, तो मृत्युशय्यासे उठकर भी वहां चले जायंगे! मैं जानता हूं कि आप मेरी बात नहीं मानेंगे।" (सरदार दादाकी खूबी यह थी कि मजाक करते समय भी वे अपने चेहरेको बहुत गंभीर रख सकते थे।)

लेकिन बापूजी कोई सरदारसे कम नहीं थे। उन्होंने उत्तर दिया: "भला बनियेका लड़का पैसेका लोभ कैसे छोड़ सकता है? आप रहेंगे तो कुछ अधिक पैसा मिल जायगा। इसलिए आप भी मेरे साथ चलें।"

और बापू सरदार दादाको भी अपने साथ ले गये।

सभामें बापूसे उन्होंने कहा कि आपकी तबीयत खराब है, इसलिए मुझे ही बोलने दीजिये। सभामें भी अपने विनोदी स्वभावका परिचय देते हुए सरदारने कहा: "आज मेरा जन्म-दिवस थोड़े ही है! आप लोग पैसा जमा करके देंगे तो महात्माके हाथमें और बोलूं मैं, यह कैसी बात है? बापू तो बनिया हैं; और बनिये बहुत लोभी होते हैं। देखिये न, इतनी सख्त खांसीमें भी आपको ठगनेकी शक्ति इनमें आ गई है!"

यह मीठा सम्बन्ध दोनोंके बीच आरंभसे अंत तक बना रहा। सरदारने बापूके प्रत्येक कार्यके प्रति एकनिष्ठ रहकर एकलव्यकी गुरुभक्तिका पाठ हमारे सामने फिरसे प्रस्तुत किया।

लेकिन भगवानने सरदार दादाको ऐसे समय उठा लिया जब भारतको उनकी सेवा और उनके मार्गदर्शनकी सबसे ज्यादा जरूरत थी ।

बापूजीने जो शिक्षा उन्हें दी उसकी शोभा उन्होंने बढ़ाई तथा निष्काम भावसे स्वतंत्र भारतकी सेवा करके तन-मन-धनसे उसके सच्चे सरदार बने । स्वतंत्र भारत पर आरंभमें जो बड़े बड़े संकट आये उनका सामना करनेके लिए अगर सरदार जैसे लौह-पुरुष न रहते तो देशका क्या होता, इसकी कल्पनासे भी हृदय कांप उठता है ।

५

लाड़ला उत्तराधिकारी पुत्र

पंडित मोतीलालजीके सुपुत्र जवाहर । जैसा नाम वैसे ही गुण । संत पुरुष आशीर्वाद देते हैं : 'पितासे पुत्र सवाये सिद्ध हों !' मोतीलालजीके पुत्र जवाहरलालने इस कहावत और आशीर्वादको हमारी आंखोंके सामने सत्य कर दिखाया ।

श्रद्धेय जवाहरलाल नेहरूको बापूजीने अपना उत्तराधिकारी पुत्र कहा था । बापूके और जवाहरलालजीके बीच जो सम्बन्ध थे, उनका दर्शन मेरे लिए दोनोंके विराट् स्वरूपका एक अत्यन्त भव्य और पवित्र दर्शन था । इस भव्य दर्शनकी एक झांकी हमें बापूजीके इन शब्दोंमें मिलती है :

"बहादुरीमें जवाहरलाल सबसे आगे हैं। देशप्रेममें तो उनसे बढ़कर कोई हो ही कैसे सकता है? कुछ लोग यह कहते हैं कि जवाहरलाल जल्दबाज और तेज-मिजाज हैं। इस समय उनका यह स्वभाव भी एक गुण है। अगर उनमें जल्दबाजी और तेजी है, तो साथ ही उनमें एक राजनीतिज्ञकी बुद्धि भी है। अनुशासनको पसंद करनेवाले होनेके कारण उन्होंने यह भी दिखा दिया है कि वे सदा अनुशासनका पालन करते हैं — उस स्थितिमें भी जब अनुशासनका पालन उन्हें दुःखदायी मालूम होता है! बेशक, जवाहरलाल उग्र विचारके हैं, लेकिन वे अपने आसपासके उग्र वातावरणसे भी कहीं आगेकी बात सोच सकते हैं। इसके बावजूद वे इतने विनम्र और व्यावहारिक हैं कि एक बातका वे हमेशा ध्यान रखते हैं: इस हद तक उग्र न बना जाय कि परिस्थिति बिगड़ जाय। उनका मन स्फटिकके समान निर्मल है और उनकी सचाई संदेहसे परे है। वे निर्भय और वीर हैं। राष्ट्र उनके हाथमें सुरक्षित है।"

और गुरुदेव टागोरके ये उद्‌गार भी जवाहरलालजीके उदात्त स्वरूपका हमें दर्शन कराते हैं: "राजनीतिमें जहां विश्वासघात और आत्म-वंचना अपना महत्त्व रखते थे वहां जवाहरलालने पवित्रताके आदर्शको अधिक बलवान बनाया है। सत्यका आश्रय लेनेमें खतरा दिखाई देने पर भी उन्होंने सत्यको अपनाया है। असत्यको उन्होंने सुख और समृद्धि पानेका तथा कष्ट-निवारणका साधन मानकर कभी नहीं अपनाया। उनकी शुद्ध वृत्ति राजनीतिक चालाकीके

रास्ते जानेसे इनकार करती है। उस रास्ते पर यदि सफलता भी मिले, तो जवाहरको उसकी परवाह नहीं; क्योंकि वे जानते हैं कि उस रास्ते पर क्षुद्रता और हीनता भी कम नहीं मिलतीं।''

तो बापूजीने ऐसे एक उदात्त पुरुषको अपना राजनीतिक उत्तराधिकारी पुत्र बनाया था। यह उत्तराधिकार कोई धन-दौलत या जमीन-जागीरका नहीं था, जिसके खतम हो जाने पर फिरसे कमा कर दुनियामें प्रतिष्ठाकी रक्षा की जा सके। इस उत्तराधिकारको स्वीकार करनेका अर्थ था हाथमें प्रज्वलित अग्निको लेना और सत्य तथा अहिंसाके बल पर हिन्दुस्तानकी ख्यातिको बनाये रखना। ऐसी जिम्मेदारीवाला उत्तराधिकार राष्ट्रके पिताके समान बापूने राष्ट्रके पुत्र जैसे जवाहरलालको सौंपा। जवाहरलालजीने भी कितनी बड़ी बड़ी कठिनाइयों, संकटों, मुसीबतोंमें से गुजर कर हिम्मत और बहादुरीसे उस उत्तराधिकारको सुशोभित किया? संस्कृतका एक सुभाषित है: 'यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।' — जो क्रियाशील है वही विद्वान है। जवाहरलालजीने निरंतर क्रियाशील रहकर अपने बालकों जैसे निर्दोष और मीठे स्वभाव तथा शारीरिक स्फूर्तिके कारण दुनियामें भारतकी कीर्तिको चरम सीमा पर पहुंचाया है।

बापूजी और जवाहरलालजीके बीच केवल पिता-पुत्र जैसा ही सम्बन्ध नहीं था। दोनोंके बीच घनिष्ठ मित्रोंका सम्बन्ध भी था। मानें तो बापूके हाथमें देशकी सार्वभौम सत्ता होते हुए भी पंडितजीका स्थान पुत्रके सिवा भारतके

प्रधानमंत्रीका भी था । इस बातको ध्यानमें रखकर बापूजी एक नागरिकके नाते भी जवाहरलालजीका आदर करते थे ।

१९४६–४७ में हिन्दुस्तानकी आजादीकी आशा बंधी । और वह आशा उषाकी किरणोंके समान उगी भी । लेकिन देशमें जगह जगह हुए कौमी दंगोंके कारण बापूजीका हृदय द्रवित हो गया । वे राजधानी दिल्लीको छोड़कर नोआखालीके हत्याकांडकी आगमें 'करेंगे या मरेंगे' के मंत्रके साथ कूद पड़े ।

उस समय पंडितजीकी जो मानसिक दशा थी उसका वर्णन करना असंभव है । लेकिन बापूजीने उसकी चिन्ता न करके गीताकी भाषामें उन्हें समझा दिया : "ईश्वर मनुष्यके सामने जो भी काम रखे उसे प्रभुकी प्रसादी मानकर, फलकी आशा रखे बिना, आनंदसे पूरा करनेका संपूर्ण प्रयत्न मनुष्यको करना चाहिये ।"

१९४६ में बापू नोआखाली चले गये । फिर भी जवाहरलालजीको यह विश्वास तो था ही कि बड़ीसे बड़ी कठिनाईमें भी बापूके पास पहुंचकर आश्वासन प्राप्त किया जा सकेगा । कुछ ही दिन बाद पंडितजी बंगालके एक कोनेमें बसे हुए श्रीरामपुर गांवमें ता. २८–१२–'४६ को सुबह ७-३० बजे बापूकी प्रातःकालीन सैरके समय सामनेसे आते दिखाई पड़े ।

पंडितजी बापूके लिए बड़े चिन्तित रहते थे । इसलिए सामनेसे बापूको आते देखकर वे खूब उत्साहमें आ गये । दिसंबरका महीना था । सख्त सर्दी पड़ रही थी । पंडितजी और मृदुलाबहन काजिरखिल नामक गांवसे (जो श्रीराम-

पुरसे चार-पांच मील दूर था) आ रहे थे। बापू उस समय बांसका एक पुल पार कर रहे थे। बापूको पुल पार करनेकी तालीम लेते देख पंडितजीको बड़ा मजा आया। वे तो दो ही छलांगमें पुलको पार कर गये।

बापू जनवरीके आरंभमें नोआखालीके एक गांवसे दूसरे गांवकी पैदल यात्रा शुरू करनेवाले थे। वहांके रास्तों पर बीच बीचमें बने हुए बांसके पुल पार करने पड़ते हैं, क्योंकि कहीं कहीं रास्तेमें इतना कीचड़ और पानी रहता है कि उसमें चला ही नहीं जा सकता। जो लोग संतुलन कायम न रख सकें उनके लिए ये पुल पार करना कठिन होता है। और ऐसे पुल जगह जगह होते हैं। इसीलिए बापूजी बांसके पुलोंको पार करनेका अभ्यास करते थे। वैसेमें एक दिन पंडितजी आ पहुंचे।

पंडितजीके आनेसे पहले बापूने मुझे उनके रहनेकी और दूसरी सारी व्यवस्थाके बारेमें छोटी छोटी बातें भी पूछ ली थीं। मैंने सब कुछ ठीक कर दिया था।

सैरके बाद हम पड़ाव पर गये। पंडितजीने मुझे बापूकी तबीयतके बारेमें अनेक बातें पूछीं। बात-बातमें उन्हें पता चला कि उनके लिए जो कमोड रखा गया है वह बापूका है और मैंने उसे उनके कमरेमें रखा है। बस, अपनी विशेष जोशीली शैलीमें वे बोले: "तुमको इतनी अकल नहीं है कि बापूको कितनी तकलीफ होगी? बापूका कमोड हम कैसे इस्तेमाल कर सकते हैं? मैं इतना नाजुक आदमी तो नहीं हूं।"

मैंने बचावमें कहा : "लेकिन बापूने कहा था इसलिए मैं लाई हूं।"

इस पर ज्यादा नाराज होकर उन्होंने मुझसे कहा : "बापूकी नाराजगी तुम्हें सहन करनी चाहिये। बापूको संभालनेकी जिम्मेदारी तुम्हारी है। उनको कितनी क्या जरूरत है, यह देखनेका काम भी तुम्हारा है न? बापू तो ऐसे हैं कि खुद तकलीफ सहन कर लेंगे, लेकिन दूसरोंकी सब जरूरत देख लेंगे। ऐसे बापू हैं। फिर भी कहता हूं कि मैं तो जवान आदमी हूं, कहीं भी चला जाऊंगा। किसीको इस तरह बापूकी जरूरतकी चीजें तुम्हें न देनी चाहिये। चाहे बापू मार भी डालें। लेकिन तुम डरना नहीं। बापू मारेंगे नहीं।"

यह अंतिम वाक्य बोलते बोलते पंडितजीके चेहरेकी नाराजी चली गई। उस पर विनोदका भाव उभर आया। बालकोंको गलत काम करनेके लिए डांटने या उलाहना देनेके बाद जैसे माता-पिता दुलार करके उन्हें मना लेते हैं, वैसे ही प्यारसे पंडितजीने मुझे बाहोंमें भर लिया और कहा : "जाओ, बापूको कहना कि जवाहरलाल मना करते हैं।"

जिस प्रकार कोई समझदार पुत्र थोड़े समयके लिए अपने पितासे अलग पड़ता है और फिरसे जब पितासे मिलता है तब उनकी गैर-हाजिरीमें हुई अच्छी-बुरी बातोंसे पिताको ईमानदारीसे परिचित कराता है तथा उनसे उचित मार्गदर्शन प्राप्त करता है, उसी प्रकार श्रीरामपुरके एक टूटे-फूटे जले हुए झोंपड़ेमें पतली-सी गुदड़ी पर बैठकर पंडितजीने देशके

वर्तमान, भूत और भविष्यके प्रश्नोंकी बापूके साथ चर्चा की। दो दिन वे बापूके साथ रहे और उनसे प्रेरणा तथा मार्गदर्शन प्राप्त करके दिल्लीके लिए रवाना हुए। बापू अपने लाड़ले पुत्रको आधी दूर तक बिदा करने गये।

१९४७ के मार्चमें बापूजीको नोआखालीसे बिहार जाना पड़ा। वहां उन्हें भारतके भविष्यके बारेमें नये सिरेसे विचार करनेके लिए दिल्ली आनेका लॉर्ड माउन्टबेटनका निमंत्रण मिला। इसलिए बापूको बिहारसे १ अप्रैल १९४७ के दिन दिल्ली जाना पड़ा। उसी अरसेमें वहां पंडितजीके अथक परिश्रमके परिणाम-स्वरूप प्रथम एशियाटिक कान्फरेन्सका आयोजन हुआ था। जवाहरलालजीके आग्रहसे बापू १ अप्रैलको शामके ४ बजे देश-विदेशसे आये हुए प्रतिनिधियोंसे मिलने कान्फरेन्समें गये। वहांसे लौटकर पंडितजीके विषयमें बापूने कहा :

"यह लोग जो एशियाके सभी मुल्कोंसे यहां बात करने आये हैं, जवाहरलालके साथ कितने प्रेमसे बात करते हैं? सब उस पर फिदा हैं। ईश्वरकी कृपासे हमारे पास जवाहर पड़ा है। वह सारी दुनियाको अपनाना चाहता है। क्या उसकी शोभाके लिए भी हमें शांतिसे नहीं रहना चाहिये?"

चीनके एक प्रतिनिधिसे बातें करते हुए बापूने कहा : "हमारे देशमें एक जवाहर है, जिसमें नामके अनुसार ही गुण हैं। एक दिन ऐसा आयेगा जब वह दुनियाका अमूल्य रत्न बन जायगा और हिन्दुस्तान हमेशा उसके लिए गर्व करेगा।"

ये शब्द बताते हैं कि बापूकी दृष्टिमें जवाहरलालजी क्या थे।

अब देखें कि पंडितजीकी दृष्टिमें बापू क्या थे।

जून १९४७ में बापूका फिरसे दिल्ली आना हुआ। उस समय लाखों निराश्रित लोग अपने घरबार छोड़ कर भारतमें आ गये थे। हरिद्वारमें ऐसे लाखों निराश्रित छावनियोंमें पड़े थे। बापूजीके दर्शन करनेकी उन सबकी उत्कट इच्छा थी। इसलिए पंडितजी और बापूजी दोनोंने एक साथ हरिद्वार जानेका निश्चय किया। सवेरे ५ बजे हम सब दिल्लीसे हरिद्वारके लिए रवाना हुए। पहली मोटरमें बापूजी, सुशीलाबहन, ब्रजकिसनजी और मैं थी। उसके पीछेकी मोटरमें पंडितजी और इन्दिराबहन थीं। दिल्लीसे हरिद्वार जाते हुए रास्तेमें कई गांव आये। हर गांवमें बापूके दर्शनके लिए लोगोंकी भारी भीड़ जमा होती थी। उस भीड़से बापूको बचानेके लिए जवाहरलालजी मोटरसे कूद कूद कर आगे पहुंच जाते थे। असह्य गरमीमें भी वे अपनी चिन्ता नहीं करते थे। उन्हें सिर्फ बापूको आराम पहुंचानेका ही खयाल रहता था। हरिद्वारमें सारे दिनका व्यस्त कार्यक्रम पूरा करके शामके ७ बजे हम दिल्लीके लिए निकले। लौटते समय पंडितजी हमारी मोटरमें आये। पीछेकी सीट पर बापूजी और पंडितजीके साथ मैं भी बैठी थी। दुःखी और असहाय लोगोंकी करुण दशाको देखकर और असह्य गरमीमें एक मिनटका भी आराम लिये बिना सारे दिन काम करके दोनों तन-मनसे खूब थक गये थे। प्रार्थना हमने

रास्तेमें ही की। बापूजी मेरी गोदमें सिर और पंडितजीकी गोदमें पांव रखकर लेट गये। पंड़ितजी बापूके पांव दबाने लगे। वह मेरे जीवनका एक अनुपम दर्शन था। पंडितजीके हाथ बापूके पैर दबा रहे थे। उनकी आंखें दबानेवाले हाथोंको और बापूके चेहरेको भी प्रतिक्षण देख लेती थीं—पैर दबानेकी आदत न होनेके कारण कहीं बापूजीको कष्ट तो नहीं हो रहा है! पंडितजीको देशकी जितनी चिन्ता थी उससे कहीं अधिक चिन्ता बापूकी तबीयतकी थी।

बिड़लाजीकी दूध जैसी सफेद मोटर पहाड़ों और हरी-भरी वनराजिके बीच गंगाके किनारे दौड़ रही थी। उस समय संध्या भी पूरी बहारमें खिल उठी थी। सूर्य और चन्द्र भी इन महापुरुषों पर अपनी किरणें बरसा कर मानो पिताके प्रति पुत्रकी अनुपम भक्तिका दर्शन कर रहे थे! ड्राइवर जिस दिशामें अपनी मोटरको मोड़ता उसी दिशामें दोनों खिड़कीके कांचसे भीतर झांकने लगते थे।

आखिर १५ अगस्त १९४७ का दिन—स्वाधीनता-दिवस आया। पंडितजी भारतके प्रधानमंत्रीके नाते शपथ लेनेवाले थे। इस समय सबकी यह भावना होना स्वाभाविक था कि बापू दिल्लीमें रहें और सत्ता ग्रहण करनेसे पूर्व पंडितजी, सरदार पटेल और मंत्रि-मंडलके अन्य सदस्य उनके आशीर्वाद लें। लेकिन दुर्भाग्यसे बापूजीको उस समय कलकत्तेमें रुकना पड़ा, जहां १५ अगस्तके बाद फिरसे साम्प्रदायिक आग भड़क उठी और बापूजीको उपवास करना पड़ा।

आजादी मिलनेके कुछ ही दिनों बाद बढ़नेवाले भारत-वासियोंके झगड़ोंको मिटाने और भाई-भाईकी हत्याको रोकनेके लिए कोई पिता अपने बालकोंके सामने दूसरा कर भी क्या सकता था? बापूने आमरण उपवास आरंभ किया। इससे सारे देशमें चिन्ताकी लहर दौड़ जाना स्वाभाविक था। उस समय जवाहरलालजीकी स्थिति कैसी कठिन हो गई होगी? वे एक पलके लिए भी दिल्ली नहीं छोड़ सकते थे। यदि वे दिल्लीको छोड़कर बापूके पास दौड़ जायं, तो सारा देश खतरेमें पड़ जाय। महापुरुष तो भावनासे कर्तव्यको ही सदा श्रेष्ठ मानते हैं। इसलिए पंडितजी एक एक घंटेमें बापूकी तबीयतके समाचार फोन पर पूछते रहते थे। ईश्वरकी कृपासे कलकत्ता और नोआखाली शांत हो गये और बापूको एकाएक दिल्ली जाना पड़ा।

वहां जनवरी (१९४८) के दूसरे हफ्तेमें बापूजीको फिर उपवास करना पड़ा। हमारी सुख-शांतिके लिए और हमारे पापोंके कारण बापू ऐसी कठोर तपस्या करें और वह भी राजधानीमें मेरे प्रधानमंत्री रहते हुए—यह विचार ही पंडित-जीके लिए असह्य था। दिनमें दो-तीन बार वे बापूजीके पास आ जाते थे। पंडितजी उनसे कमसे कम बात करते थे, ताकि उन्हें बोलनेमें तकलीफ न हो। हम जैसोंसे बापूकी तबीयतके बारेमें पूछ कर वे गमगीन चेहरेसे खड़े रहते। तीसरे दिनका उपवास बापूजीको बड़ा कष्टदायी मालूम हुआ। जवाहरलालजी आये, दो मिनट बापूके पास खड़े रहे, फिर एक ओर जाकर आंखोंमें उमड़े हुए आंसू रूमालसे पोंछने

लगे। ऐसे शक्तिशाली पुरुषको आंसू पोंछते देखना कितना करुण था! जो वेदना मुझे बापूकी स्थिति देखकर नहीं होती थी, वह पंडितजीके आंसू देखकर हुई। मैं भी एक ओर जाकर खूब रोई। बापूके साथ पंडितजी भी उपवास करते थे; हममें से किसीको इसका पता नहीं था। लेकिन जिस दिन बापूका उपवास छूटा और उन्होंने फलके रसका कप हाथमें लिया, उस दिन इन्दिराबहनने मुझे यह बताया। बापूजीको यह जानकर बड़ा आश्चर्य और चिन्ता हुई।

पंडितजीको बापूने अनेक पत्र लिखे होंगे, लेकिन ये अंतिम दो पत्र (हिन्दीमें) बताते हैं कि पिता-पुत्रके सम्बन्धके साथ दोनोंके बीच विरल साथियोंका सम्बन्ध भी था।

चि० जवाहरलाल,

बिहारकी बात सुनकर मैं बेचैन हो गया हूं। मेरा धर्म मुझे स्पष्ट मालूम होता है। बिहारके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है। उसे मैं भूल नहीं सकता। जो कुछ सुनता हूं उसका आधा भी सत्य हो तो वह बताता है कि बिहारने मनुष्यत्वको खो दिया है। ऐसा कहना कि जो कुछ हुआ सो गुंडोंने किया है, सर्वथा असत्य होगा। अगरचे मैंने अनशनको रोकनेका बड़ा प्रयत्न किया, तो भी मैं उसे रोक नहीं सकता हूं। आज सातवां दिन है कि मैंने दुध और धान्य छोड़ रखा है। शुरू हुआ खांसी और फुंसियोंके कारण। लेकिन साथ मैं शरीरसे उकता गया था। इसमें बिहारने मामला गंभीर कर दिया और भीतरसे आवाज

निकली : 'तू इस हत्याकांडका साक्षी क्यों बने ? अगर तेरी बातें जो दियाबत्तीकी तरह साफ हैं वे न देखी जायें, तो तेरा काम खतम हुआ । क्यों नहीं मरता ?' ऐसी दलीलोंने मुझे मजबूर कर दिया है कि मैं अनशनकी ओर जाऊं । मैं निवेदन जाहिर करना चाहता हूं कि अगर बिहारमें और अन्य सूबोंमें हत्याकांड खतम नहीं होगा, तो मुझे अनशन करके देह छोड़ना पड़ेगा ।

महमद यूनुस साहब (बिहार मुस्लिम लीगके मंत्री) ने जो खत शमसुद्दीन साहब पर लिखा है, सो सरदार बलदेवसिंहजीके पास है । उसे देखो । उसमें जो (लिखा) है वह सही है क्या ? जो बना है उस पर पूरा ध्यान देना हमारा फर्ज है ।

मेरा अल्पाहार चलता रहेगा । अनशनमें देर होनेका संभव है । दिल्लीमें तुमने मुझे उपवासके बारेमें पूछा था । मैंने कहा था, आज तो कुछ खयाल नहीं है । अब हालत वही नहीं रही है । फिर भी तुम्हें जो कहना हो सो कह सकते हो । उसका असर होगा तो अनशनका विचार छोडूंगा । मेरा तो अभिप्राय है कि मेरे स्वभावको देखते हुए तुम मेरी बात पसंद करोगे । कुछ भी हो, मेरी सलाह रहेगी कि आप लोग अपना काम करते रहें । मेरी मृत्युके खयालमें समय न दें । मुझे ईश्वरकी गोदमें छोड़ दें और निश्चिन्त बनें । . . .

बापूके आशीर्वाद

इन्दिराबहनने पंडितजीके उपवासकी बात कही उसी क्षण फलके रसका गिलास एक ओर रखकर कमजोर हाथमें बापूजीने कलम पकड़ी और तुरन्त (हिन्दीमें) लिखा :

१८ जनवरी, १९४८

चि० जवाहरलाल,

उपवास छोड़ो। . . . बहुत वर्ष जीओ और हिन्दके जवाहर बने रहो।

बापूके आशीर्वाद

बापूजीने अपने जीवनमें जवाहरलालजीको अनेक पत्र अपने हाथसे लिखे होंगे, किन्तु यह पत्र बापूजीका अंतिम पत्र सिद्ध हुआ। इसके बाद तो कुछ ही दिनोंमें वे सबको छोड़कर चले गये। बापूजीके इस अलभ्य अंतिम आशीर्वादको पंडितजीने कैसे सुशोभित किया, इसका शब्दोंमें वर्णन करनेके बजाय हम सब विचार ही करें तो अधिक अच्छा होगा।

बापूजीके एकाएक उठ जानेसे पंडितजीको जो गहरा आघात लगा, उसने उनकी उमर मानो दस बरस घटा दी। बापू उनके लिए सिरछत्र जैसे थे। पंडितजी रोज शामको प्रार्थनाके बाद बापूके पास आते थे, उनके साथ एक गद्दी पर बैठते थे; कभी दोनों चिन्तातुर दिखाई देते; कभी पंडितजी उस समयकी परिस्थितिसे नाराज हो जाते, कभी हलका मजाक भी करने लगते। कभी पंडितजीकी तबीयत ठीक न रहती तो बापू उन्हें आग्रहके साथ गरम पानी और शहदका पेय पिलाते। कभी मौजमें आ जाते तो पंडितजी हमारे साथ खेलमें उछल-कूद भी कर लेते।

इस तरह २९ जनवरी, १९४८ तक चला। परन्तु ३० जनवरी, १९४८ को शामके ५-३० के बाद उसी कमरेमें हाहाकार मच गया।

जवाहरलालजी बापूकी छाती पर सिर रखकर फूट फूट कर रोये! सरदार दादाने अपनी गोदमें उनका सिर रखकर उन्हें सान्त्वना दी। आधे आधे घंटेसे आकर पंडितजी बापूके सारे शरीर पर हाथ फेर जाते, मानो उनके हाथ फेरनेसे बापू जाग जायंगे। एक बार वे मुझसे कहने लगे: "मनु, और जोरसे गीताका पाठ करो। शायद बापू जाग जायं!" ऐसी दारुण वेदना पंडितजी उस समय भोग रहे थे।

इस करुण घटनाके बाद जब कभी बापूका नाम उनके कानों पर पड़ता, उनके खिले चेहरे पर विषादकी घनी छाया फैल जाती। बापूके जानेके बाद अनेक कार्योंमें जुटे रहने पर भी वे मेरे जैसे लोगोंकी खूब चिन्ता रखते थे, सुख-दुःखके समाचार पूछते थे और मार्गदर्शन भी देते थे। इस तरह अपना प्रेम और ममता हम पर बरसा कर वे हमें बापूकी कमी महसूस नहीं होने देते थे।

१५० वर्षकी गुलामीके अंतके बाद अभी दो दशक भी नहीं बीते कि भारतका यश दुनियामें चारों ओर फैलने लगा। इसका सारा श्रेय पंडितजी बापूको ही देते थे। राष्ट्रीय पर्वोंके समय नये मंगलमय निश्चय करनेसे पहले पंडितजी बापूकी राजघाट पर बनी समाधि पर जाकर उन्हें श्रद्धा और भक्तिसे प्रणाम करते और उनके आशीर्वाद मांगते थे।

आज विश्व-पुरुष जन-नायक जवाहर हमारे बीच नहीं रहे, परन्तु उनके व्यक्तित्व और उनके महान कार्योंकी सुगन्ध सारे भारत और समस्त विश्वमें फैल रही है।

भारत-भाग्य-विधाता जवाहरको हमारे शतशः प्रणाम!

६

लाड़ला छोटा पुत्र

पंडित जवाहरलालजी जिस प्रकार रोज शामको प्रार्थनाके बाद बापूजीसे मिलने आते थे, उसी प्रकार उनके जानेके बाद लगभग रोज देवदास काका आते थे। उनके साथ उनका तीन बरसका सुन्दर पुत्र गोपू भी आता था। गोपूके आते ही सारा वातावरण आनंदसे भर जाता था। जितनी प्रतिष्ठा अथवा महत्त्व बापूकी या हमारी दृष्टिमें किसी राजपुरुषका होता उतनी ही प्रतिष्ठा अथवा महत्त्व हम सबकी दृष्टिमें इस नन्हें गोपूका भी था। किसी दिन देवदास काका न आते तो हमें उसकी बहुत परवाह नहीं होती थी, लेकिन गोपू न आता तो उसकी गैर-हाजिरी हम सबको बहुत खटकती थी। गोपू जब आता तब अपने दादाके सामने प्रस्ताव रखता: "दादा, तुम चलो। हम खेलें।" और बापू गोपूके साथ छोटे बालक बनकर खेलनेका मजा ले लेते थे। दादा और उनका यह पोता जब 'सात ताली' के दांवका खेल खेलते तब दोनोंका खेल देखनेमें हमें बड़ा मजा आता था।

सब कोई जानते हैं कि बापूजीको जो बात जनताके सामने रखनी होती थी, उसका प्रथम प्रयोग वे अपने परिवारके लोगों पर करते थे । इस सिद्धान्तके अनुसार शिक्षाके सम्बन्धमें बापूकी जो विचारसरणी थी, उसका प्रथम प्रयोग उन्होंने दक्षिण अफ्रीकामें अपने चारों पुत्रों पर ही किया । देवदास काका चारोंमें अधिक चपल, चतुर और स्पष्टवक्ता थे, इसलिए उन पर बापूका यह प्रयोग काफी सफल हुआ । देवदास काकाको बापूने शालामें कभी नहीं भेजा, फिर भी भाषाओं पर उनका जो अधिकार था उसके लिए आज भी देश-विदेशके अखबारनवीस उन्हें याद करते हैं ।

बापूने दक्षिण अफ्रीकामें 'इंडियन ओपीनियन' नामक साप्ताहिक पत्र शुरू किया उस समय कंपोजसे लेकर दूसरा जितना भी काम मेहनत-मशक्कतका प्रेसमें होता, वह सब वे देवदास काकासे और दूसरे बालकोंसे कराते थे और आनंदके साथ उन्हें ज्ञान भी देते थे । बहुत बार बापूजी दूसरे विद्यार्थियोंको विद्याभ्यासके लिए विदेश भेजनेकी सिफारिश करते थे। उस मौके पर देवदास काका तथा बापूजीके बीच अपने पुत्रोंको युनिवर्सिटीकी शिक्षा न देनेके प्रश्न पर जो चर्चा होती, उसे सुननेमें बड़ा मजा आता था ।

देवदास काका बापूसे कहते : "आपने ही हमें स्कूल-कॉलेज और युनिवर्सिटीकी शिक्षा नहीं लेने दी ।" बापू जवाबमें कहते : "मैंने तुम्हें वहां पढ़ने नहीं जाने दिया, इसीलिए तुम्हें आज इतना लाभ हुआ है । अगर स्कूल-कॉलेजमें पढ़ने जाने दिया होता, तो तुम्हें कोई लाभ न

होता। हरिलाल जबरदस्ती करके वहां पढ़ने गया था। लेकिन वहां जाकर उसने क्या पाया, यह तो तुमने देख ही लिया। आज तुम लोग जो कुछ भी हो उसका एकमात्र कारण यह है कि तुमने वास्तवमें जिसे शिक्षा ('सा विद्या या विमुक्तये') कहा जा सकता है वह शिक्षा ग्रहण की है। तुम्हारे द्वारा मैंने देशके सामने 'नई तालीम' की जो योजना रखी, उसमें मुझे सफलता प्राप्त हुई। आजका विद्यार्थी समझदार बन जाने पर किसीका गुलाम नहीं रहता, इसे सिद्ध कर दिखानेका श्रेय तुम सबको है।"

जबसे दक्षिण अफ्रीकामें बापूका सार्वजनिक जीवन आरंभ हुआ तबसे बापू और देवदास काकाका सम्बन्ध सांसारिक पिता और पुत्रका न रह कर संत पिता और पुत्रका हो गया था। और जितना अधिकार दूसरे भाई-बहनोंका बापूजी पर रहता उतना ही, अथवा कभी कभी उससे भी कम, अधिकार गांधी-परिवारका उन पर रहता था। बापूके पुत्रोंका तो इतना अधिकार भी उन पर नहीं रहता था।

वे सब आश्रममें आते और सामुदायिक भोजनालयमें भोजन करते, तो उसका बिल भी व्यवस्थापक उनके हाथ पर रख देते थे। और पुत्र भी बिना नाराज हुए सोच-समझकर बिलके पैसे चुका देते थे। ऐसे महान और विरल विभूति जैसे पिताके पुत्र होते हुए भी न तो उन्होंने बचपनमें और न जवानीमें कभी बापूजीके नामका लाभ उठानेका प्रयत्न किया अथवा उसका दुरुपयोग किया। उन्होंने कभी बापूसे

छोटीसी चिट्ठीकी भी आशा नहीं रखी । सब भाई अपने पुरुषार्थके बल पर ही आगे बढ़े और अपने अपने कार्यमें सबने सफलता प्राप्त की । इन भाइयोंकी सफलता और तेजस्वितामें हमें उस शिक्षाकी सफलताके दर्शन होते हैं, जो बापूने अपने इन पुत्रोंको दी थी।

बापूजीका कोई सार्वजनिक कार्य पुत्रोंको यदि शंकास्पद लगता, तो वे बापूसे पूछे बिना नहीं रहते थे । बापूजी भी ऐसे मौके पर अपने पुत्रोंके साथ एक पिताके बजाय मित्रकी तरह बरताव करते थे। ऐसे एक-दो अवसरों पर बापूने देवदास काकाको जो अंतिम पत्र लिखे थे, वे इस प्रकार हैं:

चि० देवदास,

तेरा पत्र मिला । मैं किसीकी कमजोर भाषा नहीं चाहता । न क्रोधभरी या अविवेकपूर्ण भाषा ही चाहता हूं । फिर भी तुझे जैसी पसंद हो वैसी भाषा तू लिख । उसमें क्या? मैं तो उसका सार ही निकालूंगा । दलीलोंसे मैं हार गया हूं । इसलिए इतना ही कह सकता हूं कि मुझे अपने रास्ते जाने दे । अगर तुझे कठोर लगता होऊं तो मैं लाचार हूं । तू जो कुछ लिखता है वह अगर सच हो, तो मुझे सारी प्रवृत्तियां छोड़ देनी चाहिये । लेकिन ये छूट नहीं सकतीं । अभी तो सहज भावसे मैंने नोआखालीको ही अपने कामका केन्द्र बनाया है । इस सम्बन्धमें शायद मुझे बिहार जाना पड़े । और कहीं जानेकी इच्छा ही नहीं होती । . . . तू मेरा पुत्र

है, फिर भी मेरा मित्र है। मित्रके रूपमें तुझे मेरे सामने गिड़गिड़ाना क्यों चाहिये? या तो तू मुझे अपनी बात समझा, अथवा मेरे दोषको प्रगट कर। ऐसा न करे तो अपने भीतर सहनशीलता बढ़ा।

बापूके आशीर्वाद

ऐसे अनेक पत्र पिता-पुत्रके बीच लिखे गये होंगे। उनमें से यह अंतिम पत्र पढ़कर आज भी आंखोंमें आंसू उमड़े बिना नहीं रहते। संत पिताका पुत्र होना और उस स्थानको सुशोभित करना कोई मामूली बात नहीं है। जनवरी १९४८ में बापूजीने अपने जीवनका अंतिम उपवास किया। उपवास आरंभ हुआ (१३ जनवरी) उसके पूर्व किसीको उसका पता नहीं था। बापूका मौन-दिन होनेके कारण उन्होंने अपना प्रार्थना-प्रवचन अंग्रेजीमें लिखकर दिया। उसके आधार पर डॉ० सुशीलाबहन और मैं हिन्दीमें प्रवचन लिखने बैठीं तभी हमें बापूके उपवासका पता चला। मैंने तुरन्त देवदास काकाको फोनसे इसकी सूचना की। दलील करनेके बारेमें तो बापूने उन्हें स्पष्ट 'ना' लिख दिया था। फिर भी मेरे जैसी छोटी लड़कीकी बुद्धि जहां तक दौड़ सकती थी वहां तक मैंने उसे दौड़ाया। मैंने सोचा कि इस उपवासके बारेमें हममें से तो कोई बापूसे दलील करनेकी हिम्मत नहीं कर सकता। शायद देवदास काका पुत्रके नाते बापूसे दलील करेंगे और यदि बापू नाराज भी हुए तो उनकी नाराजीको वे बरदाश्त कर लेंगे। इसी खयालसे मैंने उन्हें उपवासके समाचार सुनाये।

देवदास काकाने बापूसे खूब दलीलें कीं, परन्तु बापूने उनकी जरा भी परवाह नहीं की। अंतमें उन्होंने विनोदमें पुत्रसे कहा: "अरे, तू सबको जिमाता है, जीमनेका न्योता देता है। लेकिन मुझे कभी अपने घर जीमनेको कहता है?" गोपूको हमने सिखाया कि तू दादासे कह: "उपवास नहीं करना चाहिये।" बापू समझ गये। बोले: "तुझे किसने सिखाया? तू मुझे अपने घर जीमनेको न ले जाय, तो मुझे उपवास ही करना पड़ेगा न?"

इस तरह बापूजीने उपवासकी बात टाल दी। लेकिन देवदास काकासे रहा नहीं गया। इसलिए आखिरी पासा फेंकनेके खयालसे उन्होंने एक पत्र लिखा और यह कह कर मेरे हाथ पर रखा कि बापूजी जब काफी शांत हों, स्वस्थ और प्रसन्न मालूम पड़ें, उस समय यह पत्र उन्हें दे देना। पत्रमें उन्होंने लिखा था:

१३–१–'४८
प्रातः ३–३० बजे

परम पूज्य पिताश्रीकी सेवामें,

उपवासके सम्बन्धमें आपका निवेदन बहुत उतावलीमें लिखा गया है। अभी भी उसमें काफी सुधारकी गुंजाइश थी। उपवासके औचित्यके बारेमें मुझे आपसे बहुत कुछ कहना था। लेकिन मुझे तो उसकी चेतावनी मिली ही नहीं थी। मिलती तो मुझे जो कुछ कहना था कहता। मुझे तो अभी अभी चि० मनुने उपवासकी

खबर दी। मेरी खास चिन्ता और दलील यह है कि आप अंतमें अधीर बन गये। यह काम ही धीरजका है। आपको इस बातकी कल्पना नहीं है कि दिल्ली आनेके बाद आपने केवल धीरज रख कर मेहनत करनेसे कितनी बड़ी सफलता प्राप्त की है। आपकी मेहनतसे लाखों लोग बच गये हैं; और आगे भी लाखों लोग बचते। लेकिन आपने एकाएक धीरज खो दिया। आप जीवित रहकर जो काम कर सकते हैं वह इस मामलेमें मर कर नहीं कर सकेंगे, यह एक विचार मनमें रखकर आप समय रहते उपवास छोड़ दें यही मेरी प्रार्थना है।

देवदासके प्रणाम

इसके उत्तरमें बापूने लिखा :

मकर संक्रान्ति
१४-१-'४८

चि० देवदास,

तेरा पत्र मैं प्रातःकालकी प्रार्थनाके बाद पढ़ गया। कल जो थोड़ी बातें तूने कीं, उन्हें भी मैं समझ गया। मेरा निवेदन मेरे अपने अर्थमें तो उतावलीमें नहीं निकाला गया है, तेरे अर्थमें जरूर ऐसा होगा। उसे लिखनेमें सामान्यतः जितना समय मुझे लगना चाहिये उससे कम लगा। इसका कारण यह है कि उसे लिखनेके पहले चार दिनका विचार-मन्थन मेरे मनमें

चला था। चार दिन तक मैंने ईश्वरसे प्रार्थना की थी। वह निवेदन मेरे मंथन और प्रार्थनाका फल है। इसलिए उसे मेरी भाषामें या किसी भी जानकारकी भाषामें उतावलीमें लिखा हुआ नहीं कहा जा सकता। ऐसे निवेदनके विचार जिस भाषामें प्रकट किये गये उसे सुधारने जितनी गुंजाइश—अर्थात् उस भाषाको मांजने जितना सुधार करनेकी गुंजाइश — उसमें जरूर थी। और यह सुधार तेरे बताते ही मैंने उसमें कर दिया था।

उपवासके औचित्यके बारेमें तुझसे या अन्य किसीसे मैं कुछ सुनना नहीं चाहता था। लेकिन फिर भी मैंने जितना सुना वह मेरे विवेक तथा धैर्यकी निशानी था। चेतावनी तो तुझे पहली बार ही मिल गई थी। तेरी मुख्य चिन्ता और दलील बिलकुल निरर्थक कही जायगी। तू मेरा मित्र जरूर है, तू जीवनमें ऊंचा उठा है यह भी सही है; फिर भी तू हमेशा मेरा पुत्र ही रहेगा। हमारा यह सम्बन्ध कभी मिट नहीं सकता। इसलिए तेरी चिन्ताको मैं स्वाभाविक मानूंगा, परन्तु तेरी दलील तेरे छिछले विचारों और तेरी अधीरताका प्रदर्शन करनेवाली है। इस कार्यको मैं अपने धैर्यकी पराकाष्ठा मानता हूं। जो धैर्य उद्देश्यका ही नाश कर दे, उसे धैर्य कहा जायगा या मूर्खता? मेरे दिल्ली आनेके बाद जो परिणाम आये हों, उनका श्रेय मैं नहीं ले सकता। यदि लूं तो वह मेरा मोह ही कहा जायगा। मेरी मेहनतसे एक आदमी बचा हो या

अनेक बच्चे हों, उसकी जगतमें कोई कीमत हो ही नहीं सकती। उसकी कीमत सर्वज्ञ प्रभु ही आंक सकता है। जिसने सितंबरके आरंभसे आज तक धैर्य रखा उसने एकाएक धैर्य खो दिया, यह कहनेमें अज्ञान नहीं तो और क्या है? व्यवहारके न्यायसे यदि सोचा जाय तो जब मैं अपने प्रयत्न और पुरुषार्थमें हार गया तभी मैंने ईश्वरकी गोदमें अपना सिर रखा। उपवासका यही अर्थ है। जिस गजेन्द्र-मोक्षको संसारका महाकाव्य कहा गया है, उसे तू पढ़ और उस पर विचार कर। तभी शायद तू मेरे इस कार्यकी कीमत आंक सकेगा।

तेरे पत्रका अंतिम वाक्य तेरे प्रेमकी सुन्दर झांकी कराता है। इस प्रेमका मूल अज्ञान है या मोह है। यह मोह सार्वजनिक है इसीलिए वह ज्ञानका स्थान नहीं ले सकता। जीवन-मरणके प्रश्नको जहां हम छोड़ नहीं सकते वहां जीवित रहकर ही अमुक कार्य हो सकता है, यह कहना आकाश-कुसुम जैसा है। जिओ तब तक काम करो, यह सुन्दर वचन है। केवल इतनी बात इसमें जोड़ देनी चाहिये कि जो काम करो निष्काम भावसे करो। अब शायद तू समझ जायगा कि तेरी प्रार्थना मानने जैसी क्यों नहीं है। इसलिए जिस रामने यह उपवास कराया है उस रामको ही यदि छुड़वाना होगा तो छुड़वायेगा। इस बीच मैं, तू और सब लोग

यह समझें और मानें कि राम मुझे मारेगा तो भी श्रेय है और राम बचायेगा तो भी श्रेय है।

मैं तो एक ही प्रार्थना करूंगा: 'हे राम, उपवासके दिनोंमें मेरे मनको सबल रखना, जिससे मैं जीनेके लोभसे उपवास छोड़ न दूं।' काफी सोच-विचार कर चि० मनुसे लिखवाये हुए इस पत्रको तू संभालकर रखना और समय समय पर पढ़ना।

बापूके आशीर्वाद

परन्तु बापूजीका यह उपवास १८ जनवरीको निर्विघ्न समाप्त हो गया। इस उपवासके दिनोंमें देवदास काका अपने संत पिताको दूरसे ही भक्तिभावसे प्रणाम करने आते थे और साथमें गोपूको लाकर कुछ समयके लिए प्रसन्न और प्रफुल्ल वातावरण उत्पन्न करके लौट जाते थे। यह उनका रोजका क्रम था।

२९ जनवरीके दिन देवदास काका बापूके पास आये। उन्होंने शिकायत की कि "दुनियाके सभी लोगोंसे बात करनेका समय बापूजीको मिल जाता है। लेकिन मुझे तो वे कभी बात करनेका समय ही नहीं देते।" उन्हें देखते ही बापू बोल उठते थे: "यह आया अखबारवाला! बोल, क्या समाचार हैं?" उस दिन बापूने देवदास काकाके साथ दिल्लीकी राजनीतिके बारेमें थोड़ी चर्चा शुरू की, लेकिन दूसरे मुलाकातियोंके आ जानेसे उसे बन्द करना पड़ा। देवदास काका और लक्ष्मी काकीने बापूके पैर दबाये। उस

समय किसे पता था कि पुत्र और पुत्रवधू बापूसे अंतिम बार मिलकर उनके पैर दबा रहे हैं!

देवदास काका अपनी सुविधासे रातमें ही बापूके पास आते थे। उसी तरह जवाहरलालजी भी रोज प्रार्थनाके बाद रातमें ही आते थे। विधिने ३० जनवरीकी रातमें इन दोनों पुत्रोंको — एक उत्तराधिकारी पुत्र और दूसरा सगा पुत्र — बापूका कैसा करुण दर्शन कराया! दोनोंने स्वप्नमें भी इसकी कल्पना नहीं की होगी।

बापूके निर्वाणके बाद देवदास काकाने अपने हृदयकी वेदना जिन करुणापूर्ण शब्दोंमें व्यक्त की, उनका स्वर आज भी मेरे कानोंमें वैसा ही गूंज रहा है। अंग्रेजी लेखका गुजराती रूप बिगड़ने न पाये इसकी सावधानी रखनेके लिए वे मुझे अपने पास बैठाकर लिखवाते रहे थे। उनकी आंखोंसे सावन-भादोंकी वर्षाकी तरह आंसू बहते जाते। गलेमें से बड़ी कठिनाईसे आवाज निकलती। इस दशामें वे लिखवाते जाते और मैं लिखती जाती। उनके लेखके वे पृष्ठ आज भी मेरी डायरीमें सुरक्षित हैं, जिन्हें मैं उसी रूपमें यहां दे रही हूं:

"एक अनाथके नाते मैंने अपने सहपंथियोंके शोक और विचारोंमें समभागी बननेका यह प्रत्यक्ष और विशेष मार्ग अपनाया है। हम सब पर जो अंधकारकी घनी छाया उतरी है वह सबके लिए समान है, उसमें कोई भेदभाव नहीं है। मैं जानता हूं कि गत शुक्रवारसे जो शोक हम पर छाया हुआ है, उसे मैं अकेला ही अनुभव नहीं करता।

"एक पुत्रके नाते मेरा अपने पिता पर कितना अगाध प्रेम था और एक पिताके नाते वे मुझ पर कितना प्रेम रखते थे, यह तो केवल ईश्वर ही बता सकता है। २० वर्षकी उमरमें बाकी रहा शिक्षण पूरा करनेके लिए मैं बनारस जा रहा था तब उन्होंने मेरा सिर चूम लिया था। आज भी मुझे उसका स्मरण होता है। उसके पहले उन्होंने मुझे कभी चूमा हो ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं आता। पिछले तीन माहसे बापू दिल्लीमें थे। इस अरसेमें उन्होंने मेरे तीन वर्षके पुत्रको जैसा लाड़ लड़ाया, उसे देखनेका सौभाग्य मुझे मिला था। मैं एक सीढ़ी पीछे रह गया था; गोपू आगे बढ़ गया था। अभी अभी हम उनसे मिलने बिड़ला-भवन गये तब उन्होंने मुझसे कहा था: 'तेरे बनिस्बत गोपूकी गैर-हाजिरी मुझे ज्यादा खटकती है।' आज वह छोटा बालक जब अपने दादाके स्वागतकी नकल करते हुए अपना मुंह हिलाता है, उस समय हमारी आंखें आंसुओंसे भर जाती हैं।

"गांधीजी घरकी छोटी छोटी बातोंमें काफी रस लेते थे। किसी अधिकारकी दृष्टिसे गांधीजीको केवल पिताके रूपमें मानना मैंने कभीका छोड़ दिया था। मेरी दृष्टिमें वे एक संत पुरुष थे। और आप सबको लगता है वैसे ही मुझे भी उनके बिना बिलकुल सूना लगता है।

"इसलिए मैं इस करुण घटनाको उत्तर ध्रुवमें रहनेवाले एक विरक्त मनुष्यकी तरह, खून या जातिका कोई सम्बन्ध न रखनेवाले एक मानवके नाते, देखता हूं।

"उनके अवसानके ३० मिनट बाद जब मैं बिड़ला-भवन पहुंचा तो उनका शरीर गरम था। हमेशाकी तरह उनकी चमड़ी चिकनी, मुलायम और सुन्दर थी। मैंने धीरेसे उनका एक हाथ अपने दोनों हाथोंमें लिया। तब मुझे ऐसा लगा मानो उन्हें कुछ हुआ ही न हो। लेकिन नाड़ीकी धड़कन बन्द थी। अपने नीचे बिस्तर पर वे सदाकी भांति नींद ले रहे थे। सरदार पटेल और पंडित नेहरू उनके पास बैठे थे। मंत्रोच्चारका प्रयत्न करते समय अनेकोंका गला रुंध जाता था। मैं देरमें पहुंचा था। मैंने बापूके पास जाकर उनसे क्षमा मांगी, परन्तु उसका कोई अर्थ नहीं था! जीवनमें कितनी ही बार उन्होंने मेरी छोटी-मोटी गलतियों और दोषोंके लिए मुझे क्षमा किया था। इस अंतिम बार भी मुझे आशा थी कि वे शांत भावसे एकाध बार तो मेरी ओर नजर डालेंगे ही। लेकिन उनके होंठ बन्द थे। उनकी आंखें मिची हुई थीं, मानो नींदमें हों।

"हम सब सारी रात जागते रहे। बापूकी मुखमुद्रा इतनी सौम्य और शांत थी, उनके शरीरके आसपास फैले हुए दिव्य प्रकाशकी ज्योति इतनी मृदु और कोमल थी कि बापूने उपवास आरंभ करते समय जिसे 'महान मित्र' कहा था, उस मृत्युसे डरना या उसका शोक करना भी हमें अधर्म मालूम होता था।

"परन्तु दुःखद क्षण तो तब आया जब बापूके शरीरको धार्मिक विधिसे स्नान करानेके लिए हमने वह शाल और कपड़े निकाले, जो वे प्रार्थना-सभामें पहनकर गये थे। थोड़ेसे

कपड़ोंमें भी बापू सदा स्वच्छ रहते थे। आज तो उसमें संपूर्णता आ गई थी। ऊपरकी शाल पर प्रार्थना-स्थलके लॉनकी दूबकी पत्तियां और धूलके कण चिपक गये थे। धूलके ये कण और दूबकी पत्तियां झड़ न जायें, इस खयालसे हमने बहुत सावधानीसे शालकी तह की। शालको उतारते समय उसकी एक तहमें से गोलीका एक खाली कारतूस भी मिला था। छाती पर रखे हुए एक छोटेसे कपड़े पर बहे हुए खूनके बड़े बड़े दाग थे। उस परिचित कच्छके सिवा दूसरे सब कपड़े उतर गये और हम सबने इस 'नंगे फकीर' के दर्शन किये! हमारे हृदयोंके सारे बांध टूट गये। बापूके वे घुटने, वे हाथ, विशिष्ट मुद्रा दिखानेवाली वे अंगुलियां—सब कुछ वैसा ही था। उस समय बापूके शरीरको मसाला भर कर सुरक्षित रखनेके प्रस्तावका विरोध करना कितना कठिन था? परन्तु हिन्दू भावना उसे स्वीकार कर ही नहीं सकती थी। और यदि हमने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया होता, तो बापू हमें कभी क्षमा न करते।

"बापूकी मृत्यु तत्काल हुई या नहीं, इस बारेमें अनेक लोगोंने मुझसे ब्योरेवार वर्णन करनेको कहा है। गांधीजी ३० जनवरीके दिन शामके ५-१० बजे प्रार्थना-सभामें जानेके लिए निकले। उनके वफादार साथी हमेशाकी तरह उनके साथ ही थे। उनकी बायीं ओर आभा थी और दायीं ओर मनु। पांच बजे तक बापू सरदार (पटेल) से बातें करते रहे थे। प्रार्थनासे पूर्व बापू थोड़ा आराम करते थे। लेकिन आज एक मिनटका भी आराम किये बगैर वे प्रार्थना-सभाके

लिए चल दिये। उसी समय एक आदमी कहींसे आया। यह आदमी बापूकी चरण-रज लेने आया है, ऐसा मान कर मनुने उसे रोकनेका प्रयत्न किया। मनुके हाथोंको झटककर उस आदमीने तीन बार गोली छोड़ी। तीनों गोलियां गांधीजीको लगीं। वे अपनी बायीं ओर जमीन पर गिर पड़े। उनके साथ आभा भी गिरी। स्त्रियां और पुरुष सब उत्तेजना और आवेशमें सिर धुनने लगे। उसी समय उन्होंने गांधीजीको 'हे राम!' का उच्चार करते सुना। इस शब्दके साथ ही उनका अंतिम श्वास निकल गया। उन्हें उठाकर घरमें ले गये उसके पांच मिनट पहले ही यह हुआ होगा। सब पर शोकके अंधकारकी घनी छाया फैल गई।

"शोकग्रस्त कमरेमें उस रात हम बापूके आसपास प्रार्थना करते हुए बैठे थे उस समय मेरे मनमें यह बाल–सुलभ इच्छा जगी कि बापूका शरीर इन क्रूर घावों पर विजय प्राप्त करेगा और सूर्योदयसे पहले बापू जी उठेंगे! समय अविरत गतिसे आगे बढ़ रहा था और बापूकी चिर-निद्रामें जरा भी विघ्न नहीं पड़ा था। मेरा हृदय बोल उठा: 'आज सूर्य उगे ही नहीं तो?' लेकिन फूलमालायें आने लगीं। हम सब अंतिम यात्राके लिए बापूके शरीरको सजाने लगे। मैंने सुझाया कि बापूकी छाती खुली रखी जाय। दुनियाके किसी भी योद्धाकी छाती बापूकी छाती जितनी सुन्दर नहीं रही होगी। हम मंत्रोंका उच्चार और गीताका पाठ करते हुए बापूके आसपास बैठे रहे। सारी रात लोग बड़ी संख्यामें उनके दर्शनोंके लिए आते रहे। सवेरे ही सवेरे

उन्होंने हरिजन-फंडके लिए अंतिम दान एकत्र कर लिया! फूलोंके साथ लोगोंने बापू पर नोटोंकी और सिक्कोंकी वर्षा की। विदेशी राजदूतोंने अपनी पत्नियोंके साथ बापूको अंतिम नमस्कार किया। यह नमस्कार केवल शिष्टाचार ही नहीं था। राजदूत और उनके परिवारके सदस्य अपने एक सुपरिचित मित्रको अंतिम बिदा देने आये थे।

"पिछली रात मैंने अपने जीवनका एक बहुमूल्य अनुभव प्राप्त किया। कुछेक क्षणोंके लिए मैं बापूके साथ अकेला ही था। रोजकी तरह मैं रातमें ९-३० बजे उनके पास गया था। वे बिस्तर पर लेटे थे, परन्तु वर्धा जानेकी सूचना आश्रमवासियोंको दे रहे थे। मैंने उनके कमरेमें कदम रखा कि उन्होंने पूछा: 'कोई नये समाचार?' मैं अखबारके दफ्तरमें काम करता हूं, इस बातका स्मरण करानेका यह उनका हमेशाका तरीका था। इसके गर्भमें मेरे लिए एक चेतावनी भी रहती थी। वे शायद ही कोई बात मुझसे छिपाते थे। मैंने जब कभी उनसे कोई बात जाननी चाही तब उन्होंने सभी कुछ मुझे बता दिया — यह विश्वास रख कर कि मैं अपने अखबारमें उसका उपयोग नहीं करूंगा। उस रात मुझे बापूको कोई समाचार नहीं देने थे। इसलिए मैंने उनसे पूछा: 'राज्यकी नाव कैसे चलती है?' उन्होंने कहा: 'मेरा विश्वास है कि जो छोटे छोटे मतभेद हैं वे दूर हो जायंगे। लेकिन वर्धासे मैं आऊं तब तक प्रतीक्षा करनी होगी। इसमें ज्यादा देर नहीं लगेगी। सरकारके सभी सदस्य देशभक्त हैं। कोई भी देशहितके विरुद्ध कुछ करनेको तैयार

नहीं होगा। सबको साथ रहना चाहिये और सब साथ रहेंगे। कोई सैद्धान्तिक मतभेद उनके बीच नहीं है।'

"इसी विषय पर हमारी अधिक चर्चा हुई। लेकिन डर यह था कि चर्चा यदि चलती रही तो ज्यादा लोग इकट्ठे हो जायंगे। इसलिए मैंने कहा: 'बापू, अब आप सो जाइये।'

"बापू बोले, 'नहीं, मुझे सोनेकी खास जल्दी नहीं है। तू चाहे तो कुछ देर रुक सकता है।' जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, इस विषयमें आगे चर्चा चलानेकी इजाजत मुझे दूसरे दिन भी नहीं मिल सकी।

"कुछ दिन पूर्व मैंने बापूसे कहा था: 'मैं प्यारेलालको अपने साथ जीमनेके लिए ले जानेवाला हूं।' बापू बोले थे: 'जरूर ले जा। लेकिन मुझे भी कभी बुलानेका विचार तेरे मनमें आता है?' इतना कह कर वे खिलखिला उठे थे।

"कल मेरे एक घनिष्ठ मित्रकी पत्नी मुझसे मिलने आई थीं। उन्हें सार्वजनिक जीवनमें थोड़ा-बहुत रस है। वे सद्भावना और करुणाकी मूर्ति हैं। उन्होंने मुझसे कहा: 'मैं आपसे यह कहने आयी हूं कि आप गांधीजीके हत्यारेको फांसी पर हरगिज न लटकवायें। फांसीकी सजा तो उसके लिए बहुत हलकी मानी जायगी। उसे तो भूखों मारना चाहिये, सता सता कर और त्रास दे देकर मारना चाहिये।' वह बहन यह कहते समय जितनी गंभीर थीं उससे कहीं अधिक क्रोधित थीं।

"दूसरे एक भाईने मुझसे कहा: 'हम हत्यारे पर जुल्म नहीं ढा सकते, क्योंकि हम सभ्य माने जाते हैं।

लेकिन उसने जो पापकर्म किया है वह उसके हृदय पर भार बनकर उसे दबाने लगे इतने समय तक हमें उसे जिन्दा रखना चाहिये। कोई भाई या पुत्र इस हत्यारेको धिक्कारे इतना ही मैं उसे धिक्कारता हूं।' मैंने मूर्ख समझकर उनकी बातको हंसीमें टाल दिया।

"गांधीजीके हत्यारेको कायर आदमियोंका सहारा और प्रेरणा मिली थी। हमें इतना याद रखना चाहिये कि मूर्खताकी सीमामें कोई मूर्ख कैसा भी काम कर सकता है। इसलिए जिस तरह हम चोरोंसे सावधान रहते हैं उसी तरह ऐसे आदमियोंसे भी हमें सावधान रहना चाहिये। एक समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके आन्दोलनकी मैंने भी प्रशंसा की थी। शारीरिक तालीम, कवायद, प्रातःकाल जल्दी उठना, अनुशासनसे बंधा हुआ जीवन——ये सब आरंभमें इस आंदोलनके मुख्य गुण थे। परन्तु कुछ समय बाद कुछ साहसी लोग इस आंदोलनमें जुड़ गये। कुछ लोगोंको उसमें व्यक्तिगत स्वार्थ साधनेका मौका मिला। और धीरे धीरे इस आंदोलनकी अधोगति शुरू हुई। संघके कुछ नेताओंने आरम्भमें गुप्त रूपसे और बादमें खुले तौर पर आघात पहुंचानेवाली प्रवृत्तियां चलाईं और अंतमें ये लोग भयंकर विचारोंको अपने मनमें स्थान देने लगे।

"लेकिन हम अपने दृष्टिकोणको न भूलें। हिन्दू महासभामें और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघमें ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने गांधीजीके प्राणोंकी रक्षामें अपने प्राणोंकी बाजी लगा दी होती। इस हत्याके अपराधमें तो कुछ ही आदमियोंका

हाथ है। कुछ महाराष्ट्रीयोंके उसमें शरीक होनेकी वजहसे हम सभी महाराष्ट्रीयोंको तिरस्कारके पात्र न समझें। इस टोलीके बारेमें आज कुछ भी कहनेकी हिम्मत मुझमें नहीं है। इन लोगोंके पीछे जो बल काम कर रहा है उसमें छल-कपट, धोखेबाजी, असंतोष और सबसे अधिक तो शक्ति-शाली लोगोंकी ईर्ष्या-वृत्तिका संमिश्रण है।

“मैंने सुना है कि कुछ लोगोंने इस अवसर पर मिठाई खाकर आनंद मनाया है। इन लोगोंको परिणामकी कोई परवाह ही नहीं है। पीछेसे इन लोगोंका मार्गदर्शन कर रहे कुछ उपद्रवी अखबारोंको अपने मार्गमें कभी कोई संकट नहीं उठाने पड़े हैं। इन उपद्रवी लोगोंको — फिर वे बाहर हों या भूगर्भमें चले गये हों — सीधा करनेका तरीका सरकार अच्छी तरह जानती है। इन लोगोंकी संख्या इतनी थोड़ी है कि आम जनताको उनके लिए कोई भी कदम उठाना जरूरी नहीं है। इन सबको हमें सरकारकी जिम्मेदारी पर छोड़ देना चाहिये। उनसे किसी भी तरह वैर लेने या बदला लेनेका प्रश्न नहीं उठता। खूनकी नदियां बहानेसे क्या हमें अपने बापू वापिस मिल जायंगे? कभी नहीं।

“भूतकाल पर नजर डालनेसे हममें से कुछ लोगोंको लगेगा कि हम बापूकी रक्षा नहीं कर सके। ७८ वर्षकी लम्बी उमरमें प्रभुके सिवा दूसरे किसने बापूकी रक्षा की? और क्या बापू सदा ही खतरेको हाथमें लेकर नहीं घूमते थे? हमारे इस शोक और संकटके समय हम सरकार पर यह आरोप न लगायें कि उसने अपने कर्तव्यका दृढ़तासे पालन

नहीं किया; क्योंकि सरकार भी इस संकटमें हमारी तरह ही फूट-फूट कर रो रही है।

"मैं इस कथनसे सहमत नहीं हूं कि हमारा भविष्य अंधकारमय है। किसी पैगम्बरके सिवा दूसरा कौन भविष्यके बारेमें विश्वासके साथ कुछ कह सकता है? वर्तमान बेशक हमारा अंधकारमय है। परन्तु बापू जिन आदर्शोंके लिए जिये और जिन आदर्शोंके लिए उन्होंने मृत्युका आलिंगन किया उन्हें हम कार्यका रूप दे सकें, तो हमारा भविष्य निश्चित रूपमें उज्ज्वल है। इससे मेरे मनमें कोई ग्लानि नहीं है। बापू सदा हमारे साथ ही रहें ऐसा यदि हम चाहें, तो बापू हमें स्वार्थी मान सकते हैं। अब हमें अपने पैरों पर खड़ा होना है और अपनी साहसी वृत्ति पर आधार रखना है। ईश्वरकी इच्छाके बारेमें व्यर्थ शोक प्रकट करनेमें मैं अपना समय और भावना नष्ट नहीं करूंगा। बापू स्वयं तो मुक्तानन्दकी स्थितिमें हैं। अब यह तो संभव नहीं है कि वे स्थूल देहमें हमें मिल सकें, परन्तु उनकी आत्मा अवश्य हमारा मार्गदर्शन और हमारी सहायता करेगी। पिछले चार महीनोंमें बापूने प्रतिदिन जो प्रवचन किये हैं, उनमें हमें उनके उपदेश स्पष्ट रूपमें मिल सकते हैं। बापूको जो कुछ कहना था वह सब उनके इन प्रवचनोंमें आ जाता है। हम चाहें तो आपसमें लड़ सकते हैं और अपना सर्वनाश कर सकते हैं। लेकिन थोड़ेसे प्रयत्नसे हम अपने आसपास घिरे हुए काले बादलोंको बिखेर सकते हैं और उज्ज्वल प्रभातका प्रकाश पा सकते हैं।"

इतना लिखाते लिखाते तो देवदास काका खूब थक गये। मुझसे उन्होंने बापूके उपयोगकी छोटीसे छोटी चीजोंके बारेमें पूछताछ की। इस बातका उन्होंने विशेष आग्रह किया कि मैं अपनी डायरियां किसीको न तो बताऊं और न पढ़नेके लिए ही दूं। उनके कुछ पृष्ठ पढ़नेके बाद वे बोले : "अब मुझसे आगे नहीं पढ़ा जायगा। हममें से किसीमें भी बापूको समझनेकी शक्ति नहीं थी। वे मानव-देहमें आये और देव-देहमें गये। जिस तरह जानेकी उनकी इच्छा थी उसी तरह वे गये। हम लोग बहुत ही छोटे हैं, अल्पात्मा हैं। उन्होंने मुझे 'पुत्र' से 'मित्र' का बिरुद दिया; और मैंने 'मित्र' की इस पदवीका दुरुपयोग इस तरह किया, मानो मैं उनका साथी या समवयस्क होऊं!" इन शब्दोंमें पश्चात्ताप करते हुए वे बहुत रोये। मैं उन्हें कैसे सान्त्वना देती? मुझ पर उनका असाधारण प्रेम था। देश-विदेशमें देवदास काकाकी ख्याति होनेसे अनेक लोग उनसे मिलने आते थे। लेकिन उस समय वे इस तरह व्यवहार करते थे, मानो भारतके ४० करोड़ प्रजाजनोंमें से एक हों। बापूके जानेके बाद उन्होंने बापूके विशाल परिवारको संभालनेका खूब प्रयत्न किया। प्रत्येक सदस्यके व्यक्तित्वका ध्यान रखकर वे उसके साथ व्यवहार करते और उसे संतोष देते थे।

दस बारह बरसकी उमरसे ही मैं देवदास काकाके परिचयमें आ गई थी। और जबसे उनके परिचयमें आई तबसे अंत तक मेरे प्रति उनका वात्सल्य दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया।

गांधी-स्मारक-निधिके तथा गांधी-फिल्म सम्बन्धी कामके सिलसिलेमें देवदास काका हर माहका अंतिम सप्ताह बम्बईमें बिताते थे। इस कामके लिए वे आखिरी बार बम्बई आये तब मैं भी वहां थी। मेरी कमजोर तबीयतके बारेमें तो वे जानते ही थे। उन्होंने फोन पर मेरे हालचाल पूछे। मैंने कहा कि तबीयत अच्छी है, लेकिन उन्हें विश्वास नहीं आया। बोले: "तू यहां आये तो ही मुझे संतोष होगा।"

मैं गई। उनके चरणोंमें प्रणाम किया। वे बोले: "तेरी तबीयतके बारेमें तो तुझे प्रत्यक्ष देख न लिया जाय तब तक विश्वास किया ही नहीं जा सकता; क्योंकि तुझे कितना ही बुखार क्यों न हो, तू बापूकी सेवामें कोई कमी नहीं आने देती थी। इसलिए तबीयतके बारेमें तेरी बातका विश्वास न होनेसे ही मैंने तुझे यहां बुलाया है। मनु, तू जीत गई है। असंख्य सेवक-सेविकाओंके रहते भी तुझ जैसी छोटी लड़कीको ही अंतिम क्षण तक बा और बापूकी सेवा करनेका यश मिला। इसलिए तेरा जीवन सचमुच धन्य हो गया!" इस प्रकार इतनी बड़ी उमरमें भी देवदास काका बा और बापूको याद करते तब उन्हें लगता था कि माता-पिताकी छत्रछाया उनके सिरसे उठ गई है और वे अनाथ बन गये हैं।

मेरी कलाईको हाथमें लेकर वे बोले: "चेहरा तो तेरा ठीक लगता है, पर शरीर तेरा भरा नहीं।"

फिर उन्होंने गांधी-स्मारक-निधिके कार्यकी थोड़ीसी रूप-रेखा मुझे बताई। इसके बाद कहने लगे: "गांधी-फिल्म तेरी मददके बिना पूरी हो ही नहीं सकती। तेरी डायरियोंकी भी

बड़ी जरूरत रहेगी । तूने खूब मेहनत करके एक सुन्दर और स्वर्णिम इतिहास इन डायरियोंमें सुरक्षित कर रखा है । इसके लिए हिन्दुस्तान और भविष्यमें सारी दुनिया भी तेरी ऋणी रहेगी यह निश्चित है ।"

मैंने कहा : "आप इस सम्बन्धमें जो भी काम मुझे सौंपेंगे मैं करूंगी और सदा ही इसमें मदद देनेको तैयार रहूंगी ।"

मेरे पास सुरक्षित बापूजीकी दूसरी चीजों और उनके पत्रोंके बारेमें बातचीत करके उन्हें बड़ा संतोष हुआ । इससे मुझे भी उत्तम मार्गदर्शन मिला ।

देवदास काकाको खाने और खिलानेका भी अजीब शौक था। लक्ष्मी काकी भी उतनी ही प्रेमल और आदर्श गृहिणी थीं । विवाहके बाद उन्होंने मैट्रिक पास की और फिर स्नातक हुईं । बचपनमें ही मां भगवानकी प्यारी हो गईं, इसलिए उनका पालन-पोषण ननिहालमें और पिताकी छत्रछायामें ही हुआ । फिर भी किसी विषयमें उनका ज्ञान छिपा नहीं रहता था । राजाजीकी पुत्री होने पर भी उनमें अनोखी नम्रता, हृदयकी शुद्धता और प्रौढ़ता थी । हम लड़कियां जब उनके घर इकट्ठी होतीं तब दोनों पति-पत्नी हमारे जैसे ही बन जाते थे । सात आठ भाषाओं पर देवदास काकाका अधिकार था। लक्ष्मी काकी भी आधी रात तक जागकर 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के प्रूफ देखनेमें काकाकी मदद करती थीं । नन्हेंसे गोपूको जब लक्ष्मी काकी इतिहास, भूगोल, गणित और भाषाओंका तथा दूसरा सामान्य ज्ञान देतीं उस समय यह कहावत चरितार्थ

होती थी : 'एक सद्‌गुणी माता सौ शिक्षकोंकी गरज पूरी करती है ।'

देवदास काका और लक्ष्मी काकी दोनों ही सरस और स्वादिष्ट गुजराती भोजन बना लेते थे । हमें जिमाते समय काका हलका विनोद करते थे : "काकीके खानेमें कहीं भूल तो नहीं है ?"

काकाका बाल-सुलभ विनोदी स्वभाव बात-बातमें झलक उठता था । वे चेहरेको भारी और गंभीर बनाये रखकर विनोद करते थे । उन्हें संगीतका भी शौक था । वे सुन्दर गाते थे और सितार भी बजा लेते थे । राग-रागिणीका भी उन्हें ज्ञान था । राजघाट पर प्रति शुक्रवार जो प्रार्थना होती थी, उसमें वे सदा ही हाजिर रहते थे । और यदि हममें से कोई हाजिर होतीं तो भजन गानेका वे हमसे ही आग्रह करते थे, क्योंकि बापूजीकी प्रार्थनामें हम भजन गाया करती थीं ।

वे एक महापुरुषके पुत्र थे और दूसरे महापुरुषके जमाई थे, फिर भी उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व उतना ही अद्‌भुत और भव्य था । आज यह कहते हुए मुझे गर्व होता है कि महान आत्माओंके आशीर्वाद आज भी गांधी-परिवार पर इस प्रकार बरसते रहते हैं कि उसके किसी भी सदस्यने गांधीजीके नामका सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक किसी भी क्षेत्रमें रत्ती भर लाभ नहीं उठाया। देवदास काका तथा लक्ष्मी काकीको तो जन्मसे ही ये संस्कार प्राप्त हुए थे ।

ऐसे देवदास काकाको एक दिन अचानक और असमय भगवानने हमारे बीचसे उठा लिया । उनके जीवनके विराट्

दर्शनसे यह सिद्ध होता है कि माता-पिता अपने बालकको यदि उचित शिक्षण और तालीम दें, तो उसकी जीवन-सिद्धियोंसे स्वयं माता-पिता तथा देश भी धन्यता अनुभव करते हैं ।

भगवान काकाकी आत्माको चिरशांति प्रदान करे और हमें उनके आदर्श मार्ग पर चलनेकी शक्ति दे! मुझे यहां नीचेका आर्ष-वचन याद आता है :

गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रवीमि ।
न मानुषात् श्रेष्ठतरं ही किंचित् ।।

७

खुदाई खिदमतगार

मुट्ठीभर हड्डियोंवाली दुर्बल कायाके भीतर बसी हुई महामानव गांधीकी सबल आत्माकी आवाज सुदूर हिमालयके शिखरोंके बीच बसे हुए सीमाप्रान्त तक भी पहुंच गई और वहांके साढ़े छह फुट ऊंचे कद्दावर शरीरवाले पठानोंके नेता खान अब्दुल गफ्फारखांने आकर साबरमतीके संतके चरणोंमें सिर झुकाया । शरीर पर मोटी खादीका घेरदार पठानी पाजामा, लंबा ढीला कुरता और कंधे पर टावेल जैसा एक छोटा दुपट्टा । कपड़ोंका रंग आसमानी । दुपट्टेका उपयोग वे नेपकिन, टावेल या चद्दरकी तरह करते थे । जब किसी दूसरे गांव जाना होता तब इस दुपट्टेमें वे कपड़ोंकी एक दूसरी जोड़ लपेट लेते थे । जिस गांव जाना होता वहांके

अपने यजमानको वे पहलेसे खबर कर देते थे। लेकिन कोई यजमान उनके लिए विशेष व्यवस्था करे, यह उन्हें बिलकुल पसंद नहीं था। ऐसे फकीरको मैं बापूके चरणोंमें झुकते देखती तब वातावरण मुझे आध्यात्मिकता और पवित्रतासे परिपूर्ण मालूम होता था। इन दो फकीरोंके, दो त्यागियोंके, दो महान और बलवान आत्माओंके, दो सेवकों और जनता-जनार्दनके दो प्रेमियोंके मिलनको देखकर आंखें धन्य हो जाती थीं — क्षण भरके लिए रोम-रोम पुलकित हो उठता था।

इन दोनों 'गांधियों' और 'त्यागी' फकीरोंकी सेवाका सौभाग्य भी मुझे जीवनमें प्राप्त हुआ है। ये पुण्य-संस्मरण लिखते लिखते अनेक बार मैं सोचने लगती हूं कि मेरे वे दिन सच्चे थे या केवल स्वप्न जैसे थे।

देशके हजारों-लाखों भाई-बहनोंके त्याग, तपस्या और बलिदानके फलस्वरूप १५ अगस्त, १९४७ को भारत आजाद हुआ। परन्तु स्वाधीनताका उषाकाल धुंधला था, व्यथा और वेदनासे भरा था। देशका विभाजन हुआ। देशवासी पागल होकर एक-दूसरेके खूनके प्यासे बन गये। धर्मान्धताके आवेश और उत्तेजनामें असंख्य हिन्दू-मुसलमानोंकी क्रूर हत्यायें हुईं, करोड़ोंकी सम्पत्ति बरबाद हुई। एक आदर्श हिन्दूके नाते बापूको इससे अपार दुःख हुआ, उनका सिर शरमसे झुक गया। एक आदर्श मुसलमानके नाते मुस्लिम कौममें अगर किसीको इन अमानुषिक घटनाओंसे हार्दिक दुःख हुआ हो तो वह सीमाप्रान्तके गांधी बादशाह खानको हुआ। बंगालमें नोआखाली जिला कौमी आगका शिकार हुआ, तो बापू

उसे शांत करनेके लिए नोआखाली गये। लेकिन जब बिहारमें हिन्दुओंने मुसलमानोंसे इसका बदला लिया, तो बापू नोआखालीसे दौड़े दौड़े बिहार पहुंचे। वहां मैंने सुना कि बादशाह खान हमारे साथ पटनामें रहनेवाले हैं। मैं अपनेको भाग्यशाली मानने लगी। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह, शरीर-श्रम, अस्वाद, अभय, सर्वधर्म-समानत्व, स्वदेशी तथा अस्पृश्यता-निवारण जैसे एकादश व्रतोंकी आजीवन साधना करनेवाले दो उत्कट साधकोंका संगम पटनामें हुआ था। इन दोनों महात्माओंकी सेवा करनेका जो सुअवसर मुझे मिला, उससे मैं बहुत बड़ा आत्म-संतोष अनुभव करने लगी।

उन दिनों बादशाह खानकी तबीयत कुछ खराब थी। इसलिए बापूने यह नियम बना दिया था कि सुबह १०–३० बजे मैं बापूका भोजन परोसूं उसी समय बादशाह खानका भी परोसूं। उनकी परोसी हुई थाली पहले बापूको दिखाऊं। बापू थालीकी हर चीजको ध्यानसे देखते, चीजोंकी मात्रा कम या ज्यादा करनेकी सूचना देते। उसके बाद ही वह थाली बादशाह खानके सामने रखी जाती।

बिहारमें मुझे बहुत अधिक काम करना पड़ता था। हरिजन-फंडके पैसे भी गिनने पड़ते थे। कभी कभी तो फंडके पैसे गिनते गिनते रातका एक बज जाता था। बादशाह खान यह सब जानते थे। एक दिन खाना खाते खाते बोले: "मनु, इतनी जल्दी मुझे खाना देनेमें तुम्हें दिक्कत पड़ती होगी न? तुम्हारी सेवा देखकर मुझको बड़ा संतोष होता है। तुम्हें कोई कुछ भी कहे, मगर महात्माजीकी

सेवा तुम खुदाके हजारों गरीबों और दीन-दुखियोंके खातिर कभी न छोड़ना; क्योंकि मुझे पूरा यकीन है कि वे (महात्माजी) हम सबोंके और गरीबोंके नुमाइन्दे हैं। तुम्हें और महात्माजीको मुझे सरहद ले जाना है। देखें, खुदा कब वह मौका देता है।

वे बापूको हमेशा 'महात्माजी' कहते थे। बापूके प्रति उनकी अपार श्रद्धा थी।

ऊपरकी बात केवल मुझसे ही कह कर उन्होंने संतोष नहीं माना। बापूसे भी उन्होंने कहा: "इस लड़कीको आप कभी भी जाने न देना।"

बापू बोले: "जहां तक मैं जिन्दा हूं या वह जिन्दा है, वहां तक तो मैंने उसे अभय-दान दिया है। अगर वह चाहे तो मुझको कभी भी छोड़ सकती है। मैं बन्धनमें हूं; उसको मैंने नहीं रखा है। वह आपको भूखा तो नहीं रखती न?"

मेरे सम्ब्रन्धमें इतनी बात करनेके बाद बापूसे उन्होंने कहा: "मुझे आपमें पूरा भरोसा है। आपने देशमें राजनीतिक जागृति पैदा की है। आप एक योगीकी कक्षामें हैं। सबकी कमनसीबी है कि वे आपको समझ नहीं सकते। अनेक कार्योंमें एकसी सफलता जैसी आपको मिली है वैसी अभी तक दूसरे किसीको नहीं मिली है।"

और बापूकी दृष्टिमें बादशाह खान क्या थे? एक विशाल सभामें बापूने उनके बारेमें जो कहा था, वह मैं उन्हींके शब्दोंमें यहां देती हूं: "यहां मेरे पास बादशाह खान

बैठे हैं । मैं आपको यह बताऊंगा कि वे अहिंसाकी ओर कैसे आकर्षित हुए । उनका जन्म ऐसे कबीलेमें हुआ है, जिसमें हिंसाका जवाब हिंसासे ही दिया जाता था । ऐसा जनूनी उनका कबीला था । उसमें ऐसी भी मिसालें पाई जाती हैं जिनमें बापने बेटेको मौतके घाट उतार दिया था । पठानोंमें पुश्तैनी दुश्मनी चली आती थी, जो कभी मिटती ही नहीं थी । इसलिए बादशाह खानने सोचा कि ऐसी हिंसासे तो वैर बढ़ेगा ही, घट नहीं सकता । उन्होंने अहिंसाका रास्ता अपनाया । इससे पठानोंमें ऐसा परिवर्तन हुआ, जो हमें अचरजमें डाल देता है । बादशाह खान प्रेमसे और सेवासे सबके दिल जीत लेते हैं, इसीलिए लोग उन्हें 'बादशाह' या 'फकीर' कह कर उनका सम्मान करते हैं । वे दिनों-दिन अहिंसा और सत्यके अधिक निकट पहुंच रहे हैं, क्योंकि उन्होंने इन दोनों आश्चर्योंके मर्मको समझ लिया है । इस सभामें आये हुए सब लोगोंसे मैं प्रार्थना करूंगा कि बादशाह खान बहादुरीके जिस रास्ते पर आज तक चले हैं उसी पर आप लोग भी चलें ।"

भारतके प्रति बादशाह खानकी अपार भक्ति उनके इन शब्दोंमें उसी सभामें प्रकट हुई थी :

"भाइयो और बहनो,

"महात्माजी चाहते हैं कि मैं आपसे कुछ कहूं । पर मेरी समझमें नहीं आता कि मैं क्या कहूं । मैं हिन्दुस्तानके बारेमें जितना ही सोचता हूं उतना अंधेरा बढ़ता ही मालूम होता है । बहुत कोशिश करने पर भी मुझे रोशनी नहीं

मिलती । आज हिन्दुस्तानमें रहनेवाले तमाम हिन्दू, मुसलमान, सिख सबको सोचना चाहिये कि अगर हिन्दुस्तान जलेगा तो नुकसान किसका होगा । मैं तो खुदाका खिदमतगार हूं । मेरा काम सेवा करना है । मैंने कुछ धर्मोंके बारेमें पढ़ा है और अपना मजहब भी मैं अच्छी तरह जानता हूं । मेरा मजहब और पैगम्बर साहब दोनों कहते हैं कि अच्छा इन्सान वही है जो खुदाके बंदोंको फायदा पहुंचाये । फिर यह कैसे हो सकता है कि खुदाई खिदमतगार और एक मुसलमान होते हुए भी दूसरोंकी सेवा करनेके लिए मैं न रहूं । फिर भी मैं अपनेको कमजोर समझता हूं कि नोआखाली जाकर मैं कुछ भी न कर सका ।

"मुझे तो आपसे दूसरी बात कहनी है कि अंग्रेजोंने कह दिया है कि १५ मईके बाद हम हिन्दुस्तानको छोड़कर चले जाते हैं । तब तो हमारा फर्ज और भी ज्यादा बढ़ जाता है । इस थोड़ीसी मुद्दतमें हमें अपना मुल्क संभालनेकी कोशिश करनी चाहिये, नहीं तो हमारा बड़ा नुकसान होगा । आपको एक बात और समझनी है कि जो काम मुहब्बतसे हो सकता है वह नफरत और जबरदस्तीसे नहीं हो सकता । महात्माजी भी यही बात कहते हैं कि मुहब्बतके कामसे मुल्कको फायदा पहुंचता है । यूरोपकी मिसाल हमारे सामने है । १९१४ में पहली लड़ाई हुई । १९३९ में दूसरी लड़ाई हुई । अब तीसरी लड़ाई अगर होगी तो दुनिया बरबाद हो जायगी । आप लोगोंको यह बात समझनी चाहिये । यह बात महात्माजीके फायदेकी नहीं, मुल्कके फायदेकी है —

हम सबके फायदेकी है। पाकिस्तान अगर बनता है तो मुहब्बतसे बन सकता है। जबरदस्तीसे बना हुआ पाकिस्तान कायम न रह सकेगा।

"मैं हिन्दू, मुसलमान, सिख सबसे अदबसे अपील करता हूं कि अपना फर्ज समझो। आज हिन्दुस्तान जल रहा है। यह आग पंजाब और सरहदमें भी पहुंच जायगी। हमें इस आगको बुझानेकी कोशिश करनी चाहिये। हमें तमाम हिन्दुस्तानियोंकी ओरसे सभी लोगोंकी आजादीके लिए सोचना चाहिये।"

ये शब्द सरहदके गांधी बादशाह खानने बड़ी दर्दभरी और आजिजीभरी आवाजमें कहे।

दुर्भाग्यसे देशके टुकड़े हुए, फिर भी बादशाह खानने अपने धर्मबन्धुओंको (जो मजहबके नाम पर खून-खराबा कर रहे थे) धर्मके एक प्रखर अभ्यासीके नाते समझाना या मनाना कभी नहीं छोड़ा। बहुत बड़ी कठिनाईके बावजूद वे जिन्ना साहबसे उनके बंगले पर मिलने गये। वहां डेढ़ घंटेसे ज्यादा दोनोंकी बातचीत चली। हम सब बड़ी चिन्तामें पड़ गये। बहुत आजिजी करनेके बाद भी जिन्ना साहब किसी तरह झुके नहीं। बादशाह खानने उनसे साफ शब्दोंमें कहा: "मजहब हमें आपसमें बैर करना सिखाता ही नहीं।"

एक समय हम पटनासे दिल्ली जा रहे थे। तीसरे दरजेके डिब्बेमें बापूजीने बादशाह खानके सोनेका स्थान अपने सामनेके पटिये पर रखवाया था। मैं उनसे पूछने गई कि

आपका बिस्तर कहां है। उन्होंने तुरन्त अपना वह मोटा दुपट्टा मुझे दे दिया। उसे मैंने सीट पर फैला दिया। उन्होंने नहा कर पहननेके एक जोड़ी कपड़े सिरहाने रखकर उनका तकिया बना लिया।

कोई रात ऐसी न बीती जब बापूके साथ रहते हुए बादशाह खानने बापूके पैर न दबाये हों। वे दलील बहुत कम करते थे। मैं अनेक नेताओं और बापूजीके बीचकी बातचीतके समय उपस्थित रही हूं। लेकिन कमसे कम बात और कमसे कम दलील करनेवाले कोई रहे हों, तो वे बादशाह खान थे। कारण यह था कि वे बापूके शरीर और समयकी बेहद कीमत करते थे। वे इतना ही कहते थे: "बस, हमें आप हुक्म दीजिये।" पठान कौम एक लड़ाका और सैनिक कौम है। उसीके संस्कार उनके खूनमें भरे हुए थे। जिसे सेनाका सरदार मान लिया उसका हुक्म कैसा भी क्यों न हो, सैनिकको उसे वफादारीसे सिर आंखों पर चढ़ाना ही चाहिये। इसलिए बादशाह खान हमेशा बापूके हुक्मकी राह देखा करते थे और हुक्म मिलने पर जी-जानसे उसकी तामील करते थे।

७ मई १९४७को हम दिल्लीसे कलकत्ता जा रहे थे। बापूजीके साथ मैं अकेली ही थी। बादशाह खान पेशावर जा रहे थे। उनकी गाड़ी हमारी गाड़ीके बाद रवाना होती थी। वे हम दोनोंको स्टेशन पर बिदा करने आये। उन्होंने बापूजीको प्रणाम किया और दर्दभरी आवाजमें कहा: "मुझको आपके सिवा और किसीका सहारा नहीं है। हम तो सैनिक

हैं। आप हमारे लिए जो हुक्म देंगे हम मान लेंगे। आप जो कहेंगे उस पर हमारा पूरा इतमीनान है।"

और मुझे छातीसे लगाकर बोले: "बेटी, पता नहीं अब तुझे मिलनेका मौका मिलेगा या नहीं! पर तूने मेरी जो सेवा की है, उसका कोई बदला मैं नहीं दे सकता। बेटी, खुदा तुझे महात्माजीकी सेवा करनेकी खूब ताकत दे, यही दुआ करूंगा।"

२२ मई, १९४७ के दिन किसीने बापूसे कहा कि आप हिमालय चले जाइये। बापूने इसके उत्तरमें कहा: "मुझे हिमालयकी ओर जाना तो है ही। लेकिन अभी तो यहां दिल्ली, हरद्वार, नोआखाली, बिहार और पंजाबमें जहां कहीं हत्याकांड हो रहे हैं वहांके करुण दृश्य देखने हैं। आप हिमालयका अद्‌भुत सृष्टि-सौन्दर्य देख आये हैं, तो मैं उसके विपरीत यह देख आया हूं कि मानवका पाषाण-हृदय किस हद तक नीचे जा सकता है। आज सीमाप्रान्तमें क्या चल रहा है? बेचारे बादशाह खान जैसी भव्य विभूतिको कैसी कैसी यातनायें भोगनी पड़ती हैं! उनकी मनोव्यथाको मैं ही समझ सकता हूं। ईश्वर ही उन्हें जिला रहा है। वैसे शरीरसे वे बहुत बीमार हैं। परन्तु इसकी वे परवाह नहीं करते। उनकी आंतें बहुत कमजोर पड़ गई हैं। फिर भी वे बिहारकी आग बरसानेवाली धूपमें यहांसे वहां भटके हैं। खानेको मिला तो ठीक, न मिला तो भी ठीक। सोते हैं तब एक मोटी चद्दर बिछा लेते हैं और पहननेके एक जोड़ी कपड़ोंका तकिया बना लेते हैं!

"इस लड़की पर उनका बेहद प्यार है। इसीसे वे इसकी सेवा स्वीकार करते हैं। बिदाईके समय जिस वात्सल्यसे उन्होंने इस लड़कीको गले लगाया, उसे मैं भूल नहीं सकता। मनु तो फूट-फूटकर रोई ही, लेकिन कद्दावर पठान बादशाह खान भी रो पड़े। उनकी आंखोंमें आंसू देखकर मैं भी पसीज गया। उस दृश्यने मुझे बेचैन बना दिया। अभी भी उस खुदाई खिदमतगारको कब तक कष्ट भोगना पड़ेगा, कौन जानता है? लेकिन बादशाह खान एक बहादुर सैनिक हैं। उन्होंने देशके खातिर ही जन्म लिया है। मुझे जरा भी शंका नहीं कि उनके सामने जो भी मुसीबतें आयेंगी उन्हें सहते सहते अगर मौतको गले लगानेका मौका आया, तो वे बहादुरीके साथ हंसते हंसते मौतसे गले मिलेंगे।"

बापूके ये शब्द कितने सच्चे साबित हुए, यह पाठक खुद सोच सकते हैं।

मई १९४७ के बाद बापूसे मिलनेका अवसर बादशाह खानको फिर कभी नहीं मिला। बापूके बलिदानके मर्मभेदी समाचार सुनकर बादशाह खानको कितना गहरा आघात लगा होगा, इसकी कल्पना वे लोग ही कर सकते हैं जो इन दोनोंके संपर्कमें आये हों।

अब तो ऐसा लगता है कि बादशाह खान देशके लिए जिये, देशके लिए जूझे और देशके लिए ही वे अपने प्राण अर्पण करेंगे!

८

हिन्दकी बुलबुल

किसीने अतिशय मेहनत करके सुन्दर और सुगंधित फूलोंका बगीचा लगाया हो, उसमें रंग-बिरंगे मोहक फूल खिल उठे हों, उनकी मीठी सुगंध चारों ओर वातावरणमें फैल रही हो, कोयल और बुलबुल जैसे पक्षी बगीचेके वृक्षोंकी डालियों पर कलगान कर रहे हों, तो उस बगीचेसे उठनेका हमारा मन हो ही नहीं सकता। बापूजीने इस देशमें ऐसा ही सुंदर, सुगंधित फूलोंवाला एक बगीचा अनेक कठिनाइयोंके बीच खड़ा किया था। उसका आनंद उठानेका सौभाग्य भी बिरले लोगोंको ही मिला होगा। जिन्हें भारतकी जनताने हिन्दकी बुलबुलका प्रिय नाम दिया उन सरोजिनी नायडू जैसी विरल विभूतिकी सेवाका मौका मुझे मिला, इससे मैंने अपने जीवनको धन्य माना।

भारतमें एक युग ऐसा भी हुआ जिसने भारतीय नारीको अबला कहा था। परन्तु उस कलंकको मिटानेका यश श्रीमती सरोजिनी नायडू जैसी माताओंको प्राप्त हुआ।

संस्कृतमें एक सुभाषित है : 'कल्याण्यः स्त्रियः पतिव्रताः।' इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि भारतीय संस्कृतिमें स्त्रियोंका प्रमुख स्थान है। लेकिन बीचका एक काल ऐसा आया जब अंग्रेजोंने बड़ी चतुराईसे हमें गुलाम बना लिया और हमने अपनी स्त्रियोंको एक या दूसरे प्रकारसे समाजके प्रमुख स्थानसे दूर करनेका प्रयत्न किया।

भगवान मनुने भी मनुस्मृतिमें कहा है कि "जहां स्त्रियोंकी पूजा होती है वहीं देवताओंका वास होता है।" ('यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।') हमारे देशमें नवरात्रका जो उत्सव मनाया जाता है, उसका ध्येय भी यही है कि देवियोंकी पूजा की जाय।

श्रीमती सरोजिनी नायडूका नाम तो बचपनसे ही मैं सुनती आई थी। जिस प्रकार भारतका कोई बालक गांधीजीका चित्र देखकर कह सकता है कि यह गांधीजीका चित्र है, उसी प्रकार मैं अखबारोंमें श्रीमती नायडूका चित्र देखती तब बाल-सुलभ भावसे कह उठती: "ये श्रीमती सरोजिनी नायडू हैं!" मैं उनका पूरा नाम बोलती थी। 'मिसिस नायडू' से मैं कुछ समझ नहीं पाती थी। २३ मार्च १९४३ को मैं आगाखान महलमें पहुंची तब मुझे उनके दर्शन करने और उनसे प्रत्यक्ष मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहां सब उन्हें अम्माजान कहते थे। किसीने मुझसे कहा कि 'अम्माजान बहुत बीमार हैं, इसलिए उनका यह कमरा खोलना मत।' अम्माजान! मैं जानती नहीं थी, इसलिए मैंने पूछा: "अम्माजान कौन?" एक काम कर रहे कैदीने कहा: "सरोजिनी नायडू, जो देशनेता हैं!" यह सुनते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि उन्हें इतने निकटसे कभी देखनेका मौका मुझे जीवनमें मिलेगा। बापू और बा तो मेरे दादा और दादीमां थे। इसलिए उनका जितना महत्त्व मेरी दृष्टिमें था उससे ज्यादा महत्त्व अम्माजानका था। मेरा मन माना नहीं, इसलिए दरवाजेकी

दरारमें से मैंने देख लिया। मनको बड़ा संतोष हुआ। शामको ६-३० बजे डॉक्टर अम्माजानको इंजेक्शन देकर बाहर निकले। उन्हें मालूम था कि मनु नामकी गांधी-परिवारकी किसी छोटी-सी लड़कीको सरकार बाकी नर्स बनाकर यहां भेज रही है, जो आज आनेवाली है।

मोटीबा (कस्तूरबा) अम्माजानके पलंगके पास खड़ी थीं। उन्होंने बासे पूछा: "मनु आ गई क्या? मेरे पास क्यों नहीं आई?" आज मुझे याद आता है कि श्रीमती सरोजिनी नायडू देशकी बहुत बड़ी नेता हैं—यह सुन-सुन कर मेरे मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा था कि उनके पास नहीं जाया जा सकता। इस डर या संकोचके कारण ही अम्माजानके पास मोटीबाके होते हुए भी मैं जाकर उन्हें प्रणाम करनेकी हिम्मत नहीं जुटा पाई। मेरा सारा शरीर कांपने लगा।

उन दिनों मुझे यह अक्ल नहीं थी कि बापू और बा इन सब नेताओंसे बड़े हैं। मैं मानती थी कि ये तो मेरे दादा-दादी हैं, परंतु देशनेता अम्माजान जैसे लोग होते हैं!

मैं उनके कमरेमें नहीं गई इसलिए मोटीबा स्वयं ही बाहर आईं और मुझे नहाने-धोनेका काम निबटा लेनेको कहा। बाको मेरा फ्रॉक पहनना पसंद न आया, इसलिए उन्होंने आलमारीमें से एक पतली साड़ी निकाल कर मुझे पहननेको दी। मैं बापूजीको प्रणाम करके नहाने गई।

आगाखान महलमें शामके ५-३० बजे सब लोग भोजन करते थे। रसोईघरकी जिम्मेदारी अम्माजान संभालती थीं, क्योंकि नये नये व्यंजन तैयार करनेका उन्हें बड़ा शौक था।

वे रोज कोई न कोई नई चीज बनाती थीं और सबको खिलाती थीं । बीमारीमें भी उन्होंने सबके खानेकी टेबल अपने पलंगके पास ही रखवाई थी । मैं स्नान करके तैयार हुई उस समय मोटीबा अम्माजानके पास बैठी थीं । मैं खूब हिम्मत बटोर कर उनके पास गई थी, ऐसा मुझे आज याद आता है । बाने कहा था : "ये तेरी अम्माजान हैं । इन्हें प्रणाम करके जीमने बैठ।" इस प्रकार अम्माजानके रूपमें परिचय देकर बाने पहले ही दिन उनके साथ मेरा पारिवारिक सम्बन्ध बांध दिया ।

मैंने उन्हें प्रणाम किया । उन्होंने अपने अतिशय वात्सल्यपूर्ण स्वभावके अनुसार मुझे प्यारसे चूम लिया । मैं तो संकोचसे जड़ बनी पुतलीकी तरह खड़ी रही । मनमें इतना हर्ष था कि मुंहसे एक भी शब्द नहीं निकला । यह मैं किसका प्रेम पा रही हूं? लोग जिनकी आवाज सुनकर पागल हो जाते हैं, वे श्रीमती सरोजिनी नायडू अपने पास खड़ी मेरे जैसी एक छोटीसी लड़की पर मांकी तरह प्यार बरसा रही हैं— यह सत्य है या स्वप्न? इस विचारने मुझे स्तब्ध कर दिया था । लेकिन अम्माजान तो प्रेमकी मूर्ति थीं । वे बोलीं : "बेटी, अब तुम खा लो। फिर मेरे पास बैठना। मेरी भी सेवा तुम करोगी न?"

मैं उनके सामने टेबल पर खाने बैठी । प्यारेलालजी उस समय खाना खा रहे थे । उनसे अम्माजानने कहा : "इस लड़कीको कच्चे टमाटर, टमाटरकी चटनी, पुडिंग वगैरा सभी

चीजें देना। यह बहुत दुबली-पतली है। इसे यहां मोटी बनाना है।''

अम्माजानने मेरा संकोच पहलेसे ही दूर कर दिया था, इसलिए जीम लेनेके बाद मैं आसानीसे उनके पास जा सकी। उन्होंने तबीयत खराब होने पर भी मुझे अपने पास बैठाया। मेरे मनमें उनकी सेवा करनेकी इच्छा हो आई। मैं उनके पैर दबाने लगी। इस भावनाने मुझे उनकी सगी बेटीका स्थान दे दिया। लेकिन एक बड़ा अफसोस मनमें रह गया। मुझे एक ही बार उनके पैर दबानेका सुअवसर मिला। उनकी तबीयत ज्यादा खराब हो गई थी, इसलिए उन्हें जेलसे रिहा करनेका हुक्म रातको जेल-सुपरिन्टेन्डेन्ट दिखा गये थे।

अम्माजानके जानेके समाचार सुनकर सब कैदी, जेलके सिपाही और सारे साथी निराश हो गये। जब मेरे जैसी एक छोटीसी लड़की एक ही दिन — वह भी कुछ घंटोंमें ही अम्माजानके हृदयसे झरनेवाले प्रेमरसमें ओतप्रोत हो गई, तब फिर जो लोग लंबे समयसे उनके साथ रहते थे, उनकी सेवा-चाकरी करनेंवाले जो कैदी, सिपाही और साथी उनके प्रेम-सागरमें स्नान कर रहे थे, उन्हें अम्माजानका वियोग कष्ट दे यह बिलकुल स्वाभाविक था। अम्माजान अपनी खराब तबीयतके कारण जेलमुक्त हो रही थीं, इसलिए उन्हें भी मुक्तिका आनन्द नहीं था। इसके विपरीत, उनके चेहरे पर एक प्रकारका दुःख झलकता था। वे सोचती थीं कि जब आत्मा सारे कष्ट बहादुरीसे सहन करती है, तो शरीर

क्यों नहीं कर सकता ? उनके चेहरेका तनाव बताता था कि उनके भीतर यही संघर्ष चल रहा है ।

मेरी निराशाका कोई पार नहीं था । भारतके रत्न माने जानेवाले नेताओंमें से एक नेताका इतना-सा ही परिचय ? मुझे आगाखान महलमें जल्दी आनेको मिला होता, तो कितना अच्छा होता !

आखिर अम्माजानको ले जानेवाली मोटरें आ पहुंचीं । पुलिस अधिकारी भी आये । अम्माजानने तैयार होकर बाको प्रणाम किया । बाके चेहरे पर वैसा ही दुःख उभर आया था जैसा परिवारके किसी स्वजनके लंबे समयके लिए यात्रा पर जाते समय अन्य स्वजनोंको उसके वियोगसे होता है । बाने हाथ जोड़कर अम्माजानसे कहा : "बहन, अब हम दुबारा मिलें या न भी मिलें, इसलिए हम अंतिम राम-राम कर लें !" अम्माजानकी आंखें छलछला आईं । वे मोटी-बाको आलिंगनमें बांधकर बोलीं : "नहीं बा, आप तो अब जल्दी ही बाहर आनेवाली हैं ।"

लेकिन यह केवल एक आश्वासन ही था ।

मैंने अम्माजानके चरणोंमें प्रणाम किया । उन्होंने मुझे मीठा उलाहना देते हुए कहा : "यह तेरा ही दोष है । तूने आते ही यहांसे मुझे निकाला ! तुझे मुझसे ईर्ष्या होती है — है न ?" इतना कह कर हाथ उठानेकी शक्ति न होने पर भी उन्होंने एक मीठी चपत मुझे लगाई ।

मोटीबाने मेरा पक्ष लेते हुए कहा : "यह छोकरी तो अच्छे मुहूर्तसे आई है । यह आज आई और आज ही आप

जेलसे बाहर निकल रही हैं। बाहर जाकर आप ज्यादा काम कर सकेंगी। अपने शरीरकी भी आप ज्यादा सेवा— संभाल कर सकेंगी।"

लेकिन अम्माजानको कोई खुशी नहीं थी। उन्होंने निराशापूर्ण स्वरमें कहा: "नहीं, नहीं, बापू जेलमें हैं, सारे साथी पिंजरेमें बंद हैं। मुझे बीमारीके कारण छोड़ा जा रहा है। इसमें बहादुरी कहां है? इसमें तो उलटी मेरी बदनामी है।" अंतिम वाक्य बोलकर उन्होंने बापूजीको प्रणाम किया और सब साथियोंसे बिदा मांगी। बापूने उनका कान उमेठ कर कहा: "देखो, बाहर जाकर तबीयत जल्दी सुधार लेना। अगर नहीं सुधारी तो तुम्हारी खैर नहीं!"

२३ मार्च १९४३को अम्माजानसे मेरा प्रथम मिलन हुआ। उस दिन मुझे उनकी थोड़ी-सी सेवा करनेका जो सौभाग्य मिला, वह मेरे लिए चिरस्मरणीय बन गया है।

२२ फरवरी १९४४के दिन—महाशिवरात्रिके पवित्र दिन—पूज्य बाका स्वर्गवास हो गया। इससे अम्माजानको गहरा आघात लगा। उन्होंने बाको भव्य अंजलि देते हुए कहा:

"कस्तूरबा भारतीय स्त्रीत्वकी जीवंत प्रतीक थीं। बाहरसे दुर्बल दिखते हुए भी वे एक बहादुर नारी थीं। ईश्वर उनकी आत्माको चिरशांति दे! जिन महापुरुषके प्रति उनका अनुराग था, उनकी सेवा करते हुए तथा अनुपम श्रद्धा, भक्ति और धैर्यसे उनका अनुसरण करते हुए उनके लिए निरन्तर त्याग करनेका जो कठिन मार्ग कस्तूरबाने अपनाया था, उस पर चलते हुए एक क्षणके लिए भी

उनके चरण कभी डगमगाये नहीं । हम इस बातसे सान्त्वना ग्रहण करें कि कस्तूरबाने अमरत्व प्राप्त किया है । भारतके इतिहासमें तथा वीरांगनाओंकी परम्परामें उन्हें अपना अधिकार-पूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है ।"

कस्तूरबाके स्वर्गवासके बाद बापूजी पर मलेरियाका हमला हुआ । सरकार घबराई । वह नहीं चाहती थी कि महादेवभाई और कस्तूरबाके अवसानके बाद यह तीसरी मृत्यु आगाखान महलमें हो । इसलिए ६ मई १९४४ को सरकारने बापूके साथ हम सबको जेलसे मुक्त कर दिया । बापूकी तबीयत बहुत खराब थी । इसलिए वे लगभग दो माह श्री शांतिकुमार मोरारजीके जुहूवाले बंगलेमें रहे । इस बार अम्माजान बापूसे पहले वहां जा पहुंची थीं । बापू मोटरसे उतरे कि अम्माजानने उन्हें आलिंगनमें बांध लिया । मैंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया ।

मुझसे उन्होंने कहा : "क्यों बेटी, आखिर बा तो हम सबको छोड़कर चली गईं? तू शांतिसे मेरे पास आना और बाकी सब बातें मुझे बताना ।" इतना कहते कहते उनका गला भर आया ।

बापूकी तबीयतकी जांच करनेके बाद सब डॉक्टरोंने मिलकर यह तय किया कि बापूको पूरा आराम करना चाहिये । उन्हें किसी भी तरहका श्रम नहीं करना चाहिये और उनके निवास-स्थान पर ऐसा कड़ा पहरा होना चाहिये कि जनता भी बापूको परेशान न करे ।

बम्बई जैसा शहर ठहरा, इसलिए मुलाकातियोंकी भीड़ लगी रहती थी। इस भीड़को साम, दाम, दंड और भेदसे रोक सके ऐसे किसी पहरेदारकी जरूरत थी। उस अवसर पर सबकी नजर अम्माजान पर टिक गई। अम्माजानने यह कठिन जिम्मेदारी बड़ी प्रसन्नतासे अपने सिर ली। उन्होंने अपने रहनेके लिए एक कुटिया बंगलेके दरवाजेके पास ही बनवा ली। बापूके सामने और मेरे सामने आंखें दिखाकर अपनी लाक्षणिक भाषामें वे बोलीं: "अब मैं इस लड़की या सुशीलाकी ही अम्माजान नहीं हूं, आपकी भी हूं — ध्यान रखना। जरा भी गड़बड़ की तो शामत आई समझ लेना!"

यह सुनकर सब लोग जोरसे हंस पड़े।

अपनी यह जिम्मेदारी अम्माजानने इस हद तक अदा की कि खुद तो बापूके पास आनेको टालती ही थीं, लेकिन अपनी पुत्री पद्मजा नायडूको भी नहीं आने देती थीं। वे कुटियामें ही सतत बैठी रहती थीं। समय समय पर आकर हमसे बापूके समाचार पूछ लिया करती थीं। बापूके आराममें बाधा न पड़े इस खयालसे वे कामके बिना बापूकी कुटियामें आती ही नहीं थीं। बापूके पास वे ही मुलाकाती जा सकते थे, जो अम्माजानकी चिट्ठी प्राप्त कर सकते थे। रातमें बापूको सुला देनेके बाद मुझे अम्माजानके पास जाकर बापूके स्वास्थ्यकी रिपोर्ट उन्हें देनी होती थी। मैं जब उनके पास जाती तब वे कोई न कोई चीज मुझे खिलाये बिना नहीं रहती थीं। इसलिए इतनी जगह पेटमें रखकर

ही मैं उनके पास जाती थी। उन्हें खुश रखनेके लिए मुझे उनकी दी हुई चीज खानी ही पड़ती थी। दूसरोंको खिलानेमें उन्हें बड़ा आनंद आता था। मैं आनाकानी करती तो वे नाराज हो जाती थीं। खानेमें रोज कोई नई चीज जरूर रहती। मैं उनसे कहती: "आपके पास आकर मैं कुछ खाऊं और बापूजी नाराज हों तो?" अम्माजान कहतीं: "वह बूढ़ा अगर नाराज हो तो तुम कहना कि अम्माजान इजाजत न दें तब तक आप कोई भी श्रम न करें। इस-लिए मुझ पर नाराज होना हो तो आप अम्माजानकी इजाजत लेकर ही नाराज हो सकते हैं!"

इसी अरसेमें मेरे परिवारके लोगोंने मुझे बापूजीके दर्शनोंके लिए परेशान कर दिया। वे सब मुझसे ऐसी आशा रखते थे कि मैं रात-दिन बापूके पास रहती हूं, इसलिए मुझे किसी भी समय उन्हें बापूके दर्शनका मौका देना चाहिये। मैं उन्हें समझाती कि डॉक्टरोंने बापूको पूरा आराम लेनेकी सलाह दी है। इसलिए अम्माजानने ऐसा कड़ा नियम बना दिया है कि उनकी इजाजतके बिना कोई बापूसे मिल ही नहीं सकता। परन्तु वे सब मानते थे कि मैं ही उन्हें बापूके पास नहीं आने देती। उनके इस त्रासके मारे एक दिन तो मैं अम्माजानके सामने रो पड़ी। मैंने सारी बात उनसे कही। अम्माजान बोलीं: "इसमें रोनेकी क्या बात है? जाकर उनसे कह दे कि आप लोग अगर रास, गरबा, भजन, संगीत वगैराका कोई मनोरंजन-कार्यक्रम लेकर आयें, तो आपको बापूके पास जानेकी इजाजत मिल जायगी।"

(बापूको शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियोंसे आराम मिले, इस खयालसे दोपहरमें उनके मनपसंद भजनों या संगीतका अथवा किसी कलाके कलाकारोंका छोटासा कार्यक्रम रखा जाता था।)

अम्माजानने इस तरह जो मार्ग निकाला उससे मुझे बड़ी खुशी हुई। मेरे कुटुम्बीजनोंने भी इस सुझावका स्वागत किया। उनकी मंडलीने बापूके सामने सुन्दर गरबा-नृत्य किया और भजन गाये। अम्माजान भी उस कार्यक्रममें उपस्थित रहीं। कार्यक्रमके अंतमें उन्होंने मेरी पीठ थपथपाकर पूछा: "क्यों, अब तो खुश हुई न?" और मुझे अपने पास खींचकर उन लोगोंसे कहा: "देखो, बापू खुश हुए, तुम सबने बापूके दर्शन किये और कोई परेशान नहीं हुआ — इसका सारा यश इस रोनी सूरतवाली लड़कीको है!"

अम्माजानकी बात सुनकर सब कोई खिलखिला उठे।

१९४६ में भारतके अनेक भागोंमें सांप्रदायिक आग भड़क उठी। बापू नोआखाली गये। अपने साथियोंको अलग अलग गांवोंमें बैठाकर उन्होंने अकेले ही 'करूंगा या मरूंगा' का मंत्र जपते जपते हिन्दू-मुस्लिम एकता सिद्ध करनेके लिए कठोर तपस्या आरंभ की। उस समय बापूकी उस तपस्याका विराट् दर्शन करनेका परम सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। बापूने अपने उस यज्ञमें यत्किंचित् सेवा करनेकी अनुमति मुझे भी दी। यह समाचार सुनकर अम्माजान बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने बापूको लिखा: "अब मेहरबानी करके इस लड़कीको अपनी सेवामें रहने देना। यह लड़की मुझे बड़ी तेजस्वी मालूम

होती है; क्योंकि इतने सारे साथियोंमें से किसीको आपकी सेवा करनेका मौका नहीं मिलता, लेकिन यह लड़की आपके जीवनके परिवर्तनके ठीक अवसर पर ही आपके पास आ पहुंची है। मेरी ओरसे मनुको यह सूचना कर दीजिये कि 'अब बूढ़ा कोई गड़बड़ करे, तो मुझसे शिकायत करे। आपके खान-पान और आरामके बारेमें वह पूरी सावधानी रखे। मुझे पत्र लिखती रहे और सब बातोंको डायरीमें लिख ले।' "

अम्माजान बापूकी कितनी चिन्ता रखती थीं, यह इस पत्रसे समझमें आता है। नोआखालीके बाद बिहारमें सांप्रदायिक आग भड़क उठी। बापूको नोआखालीसे बिहार जाना पड़ा। उसी समय भारतमें नये वाइसरॉय लॉर्ड माउन्टबेटन आये। पंडित नेहरू तथा देशके अन्य नेताओंने उन्हीं दिनों आजाद भारतमें समस्त एशियाके प्रमुख राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंकी एक परिषद्का आयोजन दिल्लीमें किया, जिसमें एशियाके उत्थान और प्रगतिके प्रश्नोंकी चर्चा होनेवाली थी। इस कारण बापूको बिहारसे दिल्लीकी यात्रा करनी पड़ी।

अम्माजानकी तबीयत कमजोर थी, फिर भी वे रोज बापूसे मिलने आती थीं। एक दिन बापूके सामने मुझसे कहने लगीं: "मैं नीचे नहीं बैठूंगी, मेरे लिए कुरसी ले आ। नीचे बैठना महात्माओंका काम है, हमारा नहीं। और ऐसे महात्माओंके साथ तो नीचे बैठनेमें भी खतरा है, क्योंकि ये हमें भी महात्मा, बाबा या साधु बना डालें!"

बात यह थी कि अम्माजानको गठियाकी बीमारी थी। इसलिए वे जमीन पर बैठ नहीं सकती थीं। इस बातको

लेकर वे ऐसा मजाक कर लिया करती थीं। रोज पांच-दस मिनट तक ऐसा विनोद करके वे बापूजीको खूब हंसाती थीं और उन्हें तरोताजा बनाकर चली जाती थीं।

उपर्युक्त एशियन कान्फरेन्समें जानेकी बापूकी बहुत इच्छा नहीं थी। परन्तु अम्माजानने उनसे कहा: "बापू, जरा चलकर देखिये तो सही कि आपके जवाहरने कितनी मेहनत करके एशियाके सब नेताओंका प्रेम संपादन किया है! जवाहरकी यह सिद्धि देखनेके लिए भी आपको कान्फरेन्समें आना चाहिये।" यह कुछ ऐसे स्वरमें अम्माजानने कहा, मानो वे किसी बालकको वहां ले जानेके लिए ललचा रही हों।

बापूजी रातके समय इस कान्फरेन्समें गये। लाखों मनुष्योंकी भीड़के बीच जब अर्धनग्न फकीर — बापू एक कुरसी पर बैठे, तो तालियोंकी गड़गड़ाहटसे वातावरण गूंज उठा। इतनेमें विनोदी अम्माजान उठ कर आईं और उन्होंने एक सुन्दर सजी हुई गुड़िया बापूको भेंट की। सारी सभा खिलखिला पड़ी। बापू कुछ समझ नहीं पाये। मुझे भी लगा कि अम्माजानको यह क्या सूझा होगा? इसी बीच अम्माजानने खूब गंभीर चेहरा बनाकर कहा: "आप सबको यह मजाक लगता है, क्योंकि मेरी साख ही ऐसी है! परन्तु भारतकी स्त्रियोंको पुतलीकी ऐसी जड़ स्थितिमें से बाहर निकालनेवाला कोई हो, तो वे इस देशके पिता महात्मा गांधी हैं। और अभी तो ऐसी बेशुमार सजी-धजी पुतलियां अंधेरेमें पड़ी हुई हैं। इसीलिए मैंने यह पुतली गांधीजीको भेंट की है।"

विनोदके साथ सिद्धान्तका प्रभावकारी दर्शन करानेकी अनोखी कला अम्माजानमें थी ।

बहुत बार अम्माजानका विनोदी स्वभाव बापूके लिए दवाका काम करता था । एक बार भारतके विभाजनसे अत्यन्त दुःखी और परेशान बने हुए कुछ पुरुष और स्त्रियां भंगी कॉलोनीमें बापूसे मिलने आये। उनकी करुण कहानी ऐसी थी, जिसे सुनकर पत्थरका दिल रखनेवाला आदमी भी पसीज उठे। उनकी बातें सुनकर बापूजीका चेहरा बहुत गंभीर हो गया। हमें भय लगा कि बापू कहीं उपवासका निर्णय न कर बैठें! उन्होंने निराश्रित भाई-बहनोंको जो जवाब दिया उसके अंतिम शब्द ये थे: "उसके पहले मैं ही इस दुनियासे चला जाऊंगा।"

उसी क्षण अम्माजान दरवाजेका परदा उठा कर अंदर आई। वे दिल्लीकी मई महीनेकी गरमीसे परिचित थीं। राजधानीकी राजनीतिक गरमीसे भी वे अच्छी तरह परिचित थीं। इसलिए उन्हें बापूकी खिन्नतापूर्ण कुटियाकी गरमीको पहचाननेमें एक क्षणकी भी देर नहीं लगी।

उस समय बापू शहद मिला गरम पानी पी रहे थे। अन्दर आते ही वातावरणको हलका बनानेकी दृष्टिसे अम्माजानने कहा: "इस गरमीमें आप ऐसा भाप निकलता गरम पानी क्यों पी रहे हैं? इसके बजाय मैं आपको बढ़िया ठंडा शरबत बना देती हूं, ताकि मुझे भी पीनेको मिले!"

बापूने उत्तर दिया: "लेकिन शरबतकी ठंडक कुछ क्षणकी ही होती है। इसके सिवा, कोई ठंडा पेय पीनेके बाद

लेकर वे ऐसा मजाक कर लिया करती थीं। रोज पांच-दस मिनट तक ऐसा विनोद करके वे बापूजीको खूब हंसाती थीं और उन्हें तरोताजा बनाकर चली जाती थीं।

उपर्युक्त एशियन कान्फरेन्समें जानेकी बापूकी बहुत इच्छा नहीं थी। परन्तु अम्माजानने उनसे कहा: "बापू, जरा चलकर देखिये तो सही कि आपके जवाहरने कितनी मेहनत करके एशियाके सब नेताओंका प्रेम संपादन किया है! जवाहरकी यह सिद्धि देखनेके लिए भी आपको कान्फरेन्समें आना चाहिये।" यह कुछ ऐसे स्वरमें अम्माजानने कहा, मानो वे किसी बालकको वहां ले जानेके लिए ललचा रही हों।

बापूजी रातके समय इस कान्फरेन्समें गये। लाखों मनुष्योंकी भीड़के बीच जब अर्धनग्न फकीर—बापू एक कुरसी पर बैठे, तो तालियोंकी गड़गड़ाहटसे वातावरण गूंज उठा। इतनेमें विनोदी अम्माजान उठ कर आईं और उन्होंने एक सुन्दर सजी हुई गुड़िया बापूको भेंट की। सारी सभा खिलखिला पड़ी। बापू कुछ समझ नहीं पाये। मुझे भी लगा कि अम्माजानको यह क्या सूझा होगा? इसी बीच अम्माजानने खूब गंभीर चेहरा बनाकर कहा: "आप सबको यह मजाक लगता है, क्योंकि मेरी साख ही ऐसी है! परन्तु भारतकी स्त्रियोंको पुतलीकी ऐसी जड़ स्थितिमें से बाहर निकालनेवाला कोई हो, तो वे इस देशके पिता महात्मा गांधी हैं। और अभी तो ऐसी बेशुमार सजी-धजी पुतलियां अंधेरेमें पड़ी हुई हैं। इसीलिए मैंने यह पुतली गांधीजीको भेंट की है।"

विनोदके साथ सिद्धान्तका प्रभावकारी दर्शन करानेकी अनोखी कला अम्माजानमें थी।

बहुत बार अम्माजानका विनोदी स्वभाव बापूके लिए दवाका काम करता था। एक बार भारतके विभाजनसे अत्यन्त दुःखी और परेशान बने हुए कुछ पुरुष और स्त्रियां भंगी कॉलोनीमें बापूसे मिलने आये। उनकी करुण कहानी ऐसी थी, जिसे सुनकर पत्थरका दिल रखनेवाला आदमी भी पसीज उठे। उनकी बातें सुनकर बापूजीका चेहरा बहुत गंभीर हो गया। हमें भय लगा कि बापू कहीं उपवासका निर्णय न कर बैठें! उन्होंने निराश्रित भाई-बहनोंको जो जवाब दिया उसके अंतिम शब्द ये थे: "उसके पहले मैं ही इस दुनियासे चला जाऊंगा।"

उसी क्षण अम्माजान दरवाजेका परदा उठा कर अंदर आईं। वे दिल्लीकी मई महीनेकी गरमीसे परिचित थीं। राजधानीकी राजनीतिक गरमीसे भी वे अच्छी तरह परिचित थीं। इसलिए उन्हें बापूकी खिन्नतापूर्ण कुटियाकी गरमीको पहचाननेमें एक क्षणकी भी देर नहीं लगी।

उस समय बापू शहद मिला गरम पानी पी रहे थे। अन्दर आते ही वातावरणको हलका बनानेकी दृष्टिसे अम्माजानने कहा: "इस गरमीमें आप ऐसा भाप निकलता गरम पानी क्यों पी रहे हैं? इसके बजाय मैं आपको बढ़िया ठंडा शरबत बना देती हूं, ताकि मुझे भी पीनेको मिले!"

बापूने उत्तर दिया: "लेकिन शरबतकी ठंडक कुछ क्षणकी ही होती है। इसके सिवा, कोई ठंडा पेय पीनेके बाद

उलटी गरमी बढ़ जाती है। ऐसा क्षणिक ठंडक देनेवाला पेय कौन पिये? 'क्षणभंगुर' वस्तुओंका सारा मोह हमें छोड़ देना चाहिये।"

अम्माजानने बापूकी इस बातको एक दम काट दिया। उन्हें डर लगा कि बापू कहीं किसी गंभीर 'फिलासफी'की बात पर न चढ़ जायं।

बापू बोले: "लो, मैं तुम्हारे लिए शहदवाला गरम पानी मंगवा दूं। आज जरा चख कर तो देखो।"

अम्माजान: "यह सब मैंने बूढ़ोंको सौंप दिया है! मैं ऐसा पानी नहीं पिऊंगी। हां, खाखरे हों तो मैं जरूर खा लूंगी।"

बापूके खाखरे सबको बहुत भाते थे।

बापूने अम्माजानको प्रेमसे दो-तीन खाखरे खानेके लिए दिये। अम्माजानने स्वाद ले लेकर खाये।

बापूने दुबारा आग्रह किया: "अरे, गरम पानी और शहदका यह पेय चखो तो सही।"

उन्होंने एक कप गरम पानी मंगवाया। उसमें नीबूका रस निचोड़ा। अम्माजान स्वाद लेकर पीने लगीं: "ओहो, यह तो बड़ा स्वादिष्ट लगता है!"

इतनेमें पंडित जवाहरलालजी आ गये। उनसे भी वही बात कहकर अम्माजानने उनके लिए एक गिलास गरम पानी मंगवाया।

बापू बोले: "देखो, मेरा शरबत इस तरह मुफ्त नहीं पिलाया जा सकता। तुम शरबतकी बोतलोंके पांच पांच

रुपये देते होगे। पहले तो मेरे इस शरबतकी तुमने कोई कीमत ही नहीं की। इसलिए अब इसकी फीस लगेगी!"

बापूने अपना बनियापन दिखाया। लेकिन अम्माजान कोई उनसे कम नहीं थीं। तुरन्त बोलीं: "परन्तु मैं पैसा लिये बिना आपके गरम पानी और शहदका प्रचार करती हूं और हमारे प्रधानमंत्री जैसोंको भी उत्साहसे पिलाती हूं। इसकी कोई कीमत ही नहीं?"

अम्माजानने पंडितजीके लिए अपना सदाका 'जवाहर' शब्द काममें न लेकर 'प्रधानमंत्री' शब्दका प्रयोग किया, इससे सबको बड़ा मजा आया और गमगीन बना हुआ वातावरण खूब हलका हो गया।

मई, जून और जुलाईकी सख्त गरमीमें बापूकी खुराक बहुत घट जाने पर भी उनका वजन बढ़ा। इसका कारण सबने यह माना कि बापूकी 'किडनी' (गुर्दा) काम नहीं करती होगी और इसलिए उनके पेटमें पानी भरा रहता होगा।

बापूजीका वजन लिया गया। उसी समय अम्माजान आ गईं। उन्हें पता तो था ही कि बापूकी तबीयत थोड़ी खराब है। लेकिन चिन्ताको और न बढ़ानेका उनका स्वभाव यहां भी झलक उठा। उन्होंने बापूके वजनके बारेमें मुझसे पूछा। मैंने कहा: "बापूका वजन गलत ढंगसे बढ़ रहा है, यह ठीक नहीं है।" अम्माजान यह बात जानती थीं। फिर भी उन्होंने मुझे डांट दिया: "गलत किसलिए? बापूके वजनकी (उनके मार्गदर्शनकी, उनके सिद्धान्तोंको मूर्तरूप देनेकी) इसी समय जरूरत है।"

बापू बोले: "लेकिन जिस तरह मेरा वजनमें बढ़ना गलत है उसी तरह यहां दिल्लीमें मेरा बैठना भी गलत है। मेरा स्थान तो नोआखाली या बिहारमें ही है।"

अम्माजान: "बूढ़े लोग हमारी देखरेखमें रहें, यही अच्छा है!"

सब लोग जोरसे हंस पड़े।

इतनेमें मृदुलाबहन आ गईं। बापूकी काश्मीर-यात्राका सारा कार्यक्रम तैयार करनेकी जिम्मेदारी पंडितजीने उन्हें सौंपी थी। अब दिल्लीमें बरसात पड़नेसे ठंडक होने लगी थी। इसलिए अम्माजानने बापूसे कहा: "बूढ़ा हो जानेके बाद आदमीका दिमाग भी क्या घूम जाता होगा?"

बापूने उत्तर दिया: "तुम्हीं अपने अनुभवसे कहो न?"

अम्माजान: "देखिये, यहां दिल्लीमें अब थोड़ी ठंडक होने लगी है तब आप काश्मीर जानेको राजी हो गये हैं! आपका दिमाग उलटा नहीं तो और क्या है?"

मैं बीचमें बोल उठी: "लेकिन अम्माजान, हम मोढ़ बनियोंकी कुलदेवी उलटी है!"

अम्माजान बोलीं: "तो अब पतेकी बात समझमें आई।"

बापू और अम्माजानके बीच जो विनोदपूर्ण संभाषण होते थे, उन्हें मैं कहां तक गिनाऊं? उनका कोई अंत ही नहीं है।

ऐसी हम सबकी अम्माजानने जब ३० जनवरी १९४८ के दिन हुए बापूके बलिदानकी बात सुनी, तो उनका हृदय इस गहरे आघातको बरदाश्त नहीं कर पाया। उनकी तबी-यत पर इसका बहुत बुरा असर हुआ। लगभग उसी समयसे

वे शय्यावश हो गईं । जिन अम्माजानने अंग्रेजोंके भयंकर शस्त्रोंका सामना करके बहादुरीसे अनेक लड़ाइयां लड़ीं, वे राष्ट्रपिता गांधीजीके एकाएक उठ जानेसे बिलकुल निराश हो गईं । उनका तन और मन टूट गया । उनके मुंहसे हर कभी यह उद्‌गार निकल पड़ता था: "बापूके बिना हम अनाथ बन गये हैं!" परन्तु जिन्होंने सर्वस्वका त्याग करके अपना संपूर्ण जीवन और सारा परिवार बापूके चरणों पर धर दिया था, उनके जीवनकी कृतार्थतामें मानो कुछ कमी रह गई थी । इसलिए बापूके जानेके एक ही वर्ष बाद २ फरवरी १९४९ को अम्माजानने भी यह दुनिया छोड़ दी । अम्माजान बापूसे वंचित हो गई थीं । हम बापू और अम्माजान दोनोंसे वंचित हो गये!

हमारे समाजमें एक मान्यता है । श्राद्ध-पक्षमें काकबलि डाली जाय, तो हमारे पितर तृप्त होते हैं । लेकिन हमारे ये पितर ऐसे नहीं हैं, जो सालमें एक बार याद करनेसे तृप्त हो जायं । इनके बताये हुए मार्ग पर हम प्रतिदिन और प्रतिक्षण चलें, तो ही ये पितर तृप्त होंगे ।

श्रीमती सरोजिनी नायडूने अपने जीवन-कालमें हमारे महान देशको और उसके स्त्री-समाजको तेजस्वी शक्तियां प्रदान की हैं । अपने पीछे जो कार्य वे अधूरे छोड़ गई हैं, उन्हें पूरा करनेकी प्रेरणा और शक्ति ईश्वर हमें दे!

९

बापू और वाइसरॉय

मार्च १९४७ में लॉर्ड वेवेल भारत्के वाइसरॉय-पदसे निवृत्त हुए और उनके स्थान पर लॉर्ड माउन्टबेटन नये वाइसरॉय नियुक्त हुए। माउन्टबेटन दंपती इंग्लैण्डके शाही परिवारके सदस्य थे।

उसी अरसेमें भारतकी राजधानीमें एशियाके विभिन्न देशोंके नेताओंकी एक परिषद् हो रही थी। बापू उस समय बिहारमें थे। वे नोआखाली और बिहारमें भड़की हुई साम्प्रदायिक आगको बुझानेके प्रयत्नमें जी-जानसे लगे थे। सारे एशियाके नेता दिल्लीमें एकत्र हों उस समय बापू वहां उपस्थित न रहें — उन नेताओंको बापू जैसे महापुरुषके दर्शन न हों, यह कैसे चल सकता था? बापूकी अनुपस्थिति सबको खटकने लगी। लेकिन वे किसीकी बात सुननेको तैयार नहीं थे। वे मानते थे कि "मेरे इस हाड़चामके शरीरको देखनेसे किसीको क्या लाभ होगा?" परन्तु मुट्ठीभर हड्डियोंवाले जिस मानवके चरणोंमें अंग्रेजोंका पशुबल झुक गया, जिसने डेढ़ सौ वर्षकी गुलामीकी जंजीरको विरोधी पक्षके खूनकी एक बूंद भी गिराये बिना तोड़ डाला, उस महामानवके दर्शनोंसे वंचित कैसे रहा जा सकता था? आखिर लॉर्ड माउन्टबेटनने हिम्मत करके बापूसे विमानमें दिल्ली आनेकी विनती की।

बापूने सोचा : "जब तक भारतके सामान्य लोगोंको विमानसे यात्रा करनेकी सुविधा न मिले तब तक मैं विमानमें यात्रा कैसे कर सकता हूं?" उन्होंने विमानमें यात्रा करनेसे इनकार कर दिया। स्पेशियल ट्रेनके लिए भी ना कह दिया। उन्होंने वाइसरॉयको लिखा कि मैं सामान्य मुसाफिरकी तरह दिल्ली आना पसंद करूंगा।

इस तरह बापूने वाइसरॉयकी विनती तो स्वीकार की, परन्तु एक सामान्य मुसाफिरकी तरह तीसरे दरजेके डिब्बेमें ही दिल्ली पहुंचे। दूसरे ही दिन बापूको लॉर्ड माउन्टबेटनके यहां जानेका प्राथमिक निमंत्रण प्राप्त हुआ। पहली मुलाकातमें दोनोंने एक-दूसरेका परिचय प्राप्त किया। वाइसरॉयने बापूकी 'आत्मकथा' वगैरा साहित्यकी मांग की। मुलाकातके दूसरे दिन माउन्टबेटन दंपतीने बापूको अपने यहां भोजनका विधिवत् निमंत्रण दिया। किन्तु बापू कुछ विशेष चीजें ही भोजनमें लेते थे, इसलिए निमंत्रणके लिए दोनोंका आभार मानकर बापूने अपनी असमर्थता प्रकट की। लेकिन जब बापूने देखा कि माउन्टबेटन दंपती उनके लायक भोजन बनवा कर उन्हें प्रेमपूर्वक खानेका निमंत्रण देना चाहते हैं, तो उन्होंने बीचका रास्ता निकाला। उन्होंने संदेश भिजवाया कि यदि वाइसरॉय महोदयको कोई एतराज न हो, तो मनु मेरा भोजन तैयार करके वाइसरॉय भवनमें लायेगी। मैं उनके साथ ही यह भोजन करूंगा और भारतके भविष्यके विषयमें उनके साथ चर्चा भी करूंगा। वाइसरॉयने बापूका यह प्रस्ताव मान लिया। इसके लिए १ अप्रैल १९४७ का दिन तय

किया गया था। बापूने इस सम्बन्धमें मुझे सारी सूचनायें दीं। १ अप्रैलको सुबह नौ बजे बापू वाइसरॉयसे मिलने गये। मैं दस बजे भाईसाहब ब्रजकिशनजी चांदीवालाके साथ बापूका भोजन लेकर वाइसरॉय भवनमें गई। भोजनमें बगैर नमकका उबाला हुआ साग था, दो खाखरोंका भूसा था तथा छह औंस बकरीका दूध था।

हमारी मोटर पोर्चमें खड़ी हुई कि चपरासीने वाइसरॉयके मंत्रीको हमारे आनेकी खबर दी। वे हमें बैठनेके एक खंडमें ले गये। वहांसे एकके बाद दूसरा आलीशान कमरा पार करते हुए हम मैदानमें पहुंचे। वहां बगीचेके लॉनमें बेंतकी हरी कुरसियों पर बैठकर माउन्टबेटन साहब और बापूजी बातें कर रहे थे। बादली धूप फैली हुई थी। हवा मंद गतिसे बह रही थी। सामने हरी घास ऐसी सुन्दर लग रही थी, मानो हरा गालीचा बिछा दिया गया हो। बगीचेके आकर्षक फूल अपनी मीठी सुगंधसे सारे वातावरणको सुगंधित बना रहे थे। एक पेड़ पर कोयल कूक रही थी। दूसरे अनेक रंग-बिरंगे पक्षी अपने मधुर कलरवसे देशके भावी प्रश्नोंकी चर्चा कर रहे दो नेताओंके शुभ प्रयत्नमें मानो शुभ शकुनके स्वर पूर रहे थे। सारा वातावरण मांगल्यका सूचक था।

इस तरफका बगीचा रंग-बिरंगे मोहक फूलोंसे खिला-खिला लगता था। मालीने अपनी अनोखी कलाका दर्शन करानेके लिए काट कर मेंहदीके मोर, मोरनी और दूसरे अनेक सुंदर पक्षी बनाये थे। बीच-बीचमें फव्वारे उड़ रहे थे।

महलके भीतर सजे हुए सोफा-सेटों, कुरसियों, बिजलीके पंखों वगैराको छोड़कर दोनों राजपुरुष कुदरतकी गोदमें बैठे थे। सूर्यदेव कभी बादलोंसे बाहर निकल कर अपनी किरणें लॉन पर फैला देते, तो कभी बादलोंमें छिप जाते थे । सारा दृश्य अनुपम था और देशकी स्वतंत्रताकी शुभ सूचना देने-वाला था । आजके शुभ दिन भारतका इतिहास नया मोड़ ले रहा था ।

हम दोनोंके पहुंचते ही लॉर्ड माउन्टबेटन खड़े हो गये । भाई साहबसे और मुझसे उन्होंने हाथ मिलाया । इसके बाद बापूने उन्हें मेरा परिचय दिया ।

माउन्टबेटन बोले : "नोआखालीमें और अन्यत्र गांधी-जीके साथ तुम्हारे अनेक चित्र अखबारोंमें देखकर मेरी पुत्री कहती थी कि यह लड़की कितनी खुशनसीब है! तुम्हारी प्रार्थना सुननेके लिए मैं अपनी पुत्रीको भेजनेवाला हूं ।"

बापूजीने वाइसरॉयसे पूछा : "आपको आपत्ति न हो तो मैं भोजन कर लूं । तब तक मनु बगीचेमें घूमेगी और भोजन पूरा होने पर खाली बरतन ले जायगी ।"

माउन्टबेटन साहबने मेरे सामने देखकर कहा : "जरूर । मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? यह सब तो अब आपका ही है। मैं तो केवल इसका ट्रस्टी हूं। हम यह सब आपके हाथोंमें सौंपनेके लिए ही यहां आये हैं!"

कितने सूचक उद्‌गार थे! मैं तो इन्हें सुनकर आनन्द-विभोर हो गई ।

इतनेमें वाइसरॉयके लिए चाय और बिस्किट आये। वे चाय पीते रहे। बापूजी भोजन करते रहे। वाइसरॉयके ए० डी० सी० ने एक फोटो खींचा। बापूजीने कहा: "आप देखना चाहें तो देख लें कि इस लड़कीके पास कोई हथियार हैं या नहीं!"

वाइसरॉय बोले: "मुझे पूरा विश्वास है कि आपकी सेविकाके पास ऐसा कुछ हो ही नहीं सकता।" मुझे बापूजीका यह कथन सत्य लगा कि माउन्टबेटन अत्यन्त शिष्ट, संस्कारी और सरल हैं।

भारतकी आजादीके सम्बन्धमें बापूजी तथा अंग्रेज राजनीतिज्ञोंकी अनेक बैठकें और चर्चायें हुई होंगी। परन्तु १ अप्रैल १९४७ का दिन तो भारतके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अंकित हो गया है!

ऐसा ही अनोखा दृश्य भंगी कॉलोनीमें उस समय देखनेमें आता जब वाइसरॉयकी पत्नी लेडी माउन्टबेटन और उनकी पुत्री अत्यन्त सरल भावसे बापूजीसे मिलने आती थीं।

वाइसरॉय भवनमें लेडी माउन्टबेटनने बहुत बारीकीसे बापूजीके भोजनका निरीक्षण किया था। सूक्ष्म दृष्टि और गहरा निरीक्षण अंग्रेज प्रजाका एक जन्मजात गुण कहा जायगा। लेडी माउन्टबेटनका फोन आया कि गांधीजीका भोजन देखनेके बाद उनका निवास-स्थान देखनेकी भी मेरी इच्छा है। दिल्लीकी सख्त गरमीमें भंगी कॉलोनीके इस छोटेसे सादे झोंपड़ेमें उन्हें देखने जैसा क्या लगा होगा? मैं उसमें बापूके साथ काफी रही थी, लेकिन मुझे कभी भी

उस झोंपड़ेका इतना महत्त्व नहीं लगा। किन्तु जब लेडी माउन्टबेटनका फोन आया तब मुझे भी उस झोंपड़ेका महत्त्व और उस स्थानका ऐतिहासिक मूल्य समझमें आ गया।

१९४५ से १९४७ तकके वर्ष और उनकी घटनायें भारतके इतिहासमें अमर हो गई हैं। उसमें भी भारतकी राजधानी दिल्ली और दिल्लीके एक कोनेमें बसी हुई भंगी कॉलोनी सारे संसारमें मशहूर हो गई। आज भी अगर दिल्लीकी भंगी कॉलोनीका नाम लिया जाय, तो किसीको भी उसके इन तीन वर्षोंके ऐतिहासिक महत्त्वका स्मरण हुए विना नहीं रह सकता।

इन तीन वर्षोंमें देश-विदेशके राजनीतिज्ञ स्त्री-पुरुषोंका इस कॉलोनीमें तांता लगा रहता था। इसका कारण यह था कि बापू इस कॉलोनीमें रहते थे। इस स्थान पर देशके नेताओंमें कभी मतभेद खड़ा होता था, तो कभी समझौता और समाधान होता था। केन्द्रमें अंतरिम सरकार रचनेकी चर्चा भी भंगी कॉलोनीके इस झोंपड़ेमें हुई थी। और अंतमें भारतकी स्वाधीनताकी नव-रचनाका मंगलाचरण भी इसी कॉलोनीमें हुआ था। इसलिए लेडी माउन्टबेटनके मनमें बापूके निवास-स्थानके बारेमें जाननेकी इच्छा पैदा होना स्वाभाविक ही था।

वाल्मीकि मंदिरके नामसे पुकारा जानेवाला यह झोंपड़ा हरिजन-शालासे सम्बन्ध रखता था। उसमें हरिजनोंके बालक पढ़ते थे। उसका कमरा पक्का चुना गया था। उसके पास ही एक कोठरी बनाई गई थी। बापूके इस कमरेकी

रचना बहुत सादी थी। कमरेके नापकी एक शतरंजी बिछा दी गई थी। बीचमें एक गद्दी पर स्वच्छ खादीकी चद्दर और एक तकिया था। इसी गद्दी पर बापूजीका आसन था।

कमरेमें तीन कुरसियां रखी जाती थीं। ये कुरसियां इस खयालसे रखी जातो थीं कि विदेशी मुलाकातियोंको आदत न होनेसे नीचे बैठनेमें तकलीफ हो सकती है। अतः वे चाहें तो इन पर बैठ सकते हैं। लेकिन ज्यादातर विदेशी मुलाकाती नीचे ही बैठते थे। बापूजीके सामने एक मेज (पुराने व्यापारियोंकी दुकानमें रहती है वैसी) रखी रहती थी। इस सादी-सी मेजके खानेमें संपूर्ण भारतके वर्तमान, भूत और भविष्य कालके प्रश्नोंसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्र, कागजात और महत्त्वपूर्ण फाइलें रहती थीं। इस खानेकी सामग्रीसे ही भारतकी स्वतंत्रताको रचना हो रही थी। उसमें से प्रतिक्षण भारतकी परिस्थितिका चित्र देखनेको मिलता था। इस मेजके ऊपर भी इतनी ही महत्त्वपूर्ण वस्तुएं रहती थीं। उस पर घड़ी, गीताजी, कुरान शरीफ, बाइबल, आश्रम-भजनावलि और तीन वानर-गुरु बिराजते थे।

बापूके इन वानर-गुरुओंको आप पहचानते हैं? यह एक चीनी खिलौना है। एक बंदरका मुंह बंद है। वह कहता है कि ऐसी वाणी कभी मत बोलो, जिससे किसीको दुःख हो। दूसरे बंदरने अपने कानों पर हाथ रखकर उन्हें बंद कर रखा है। वह कहता है कि कोई गंदी या बुरी बात मत सुनो। तीसरे बंदरने अपनी आंखों पर हाथ रख लिये हैं। वह कहता है कि कोई गंदी या बुरी बात न

देखो। अगर बुरी वाणी बोलनी पड़े, बुरी बात सुननी पड़े या बुरी बात देखनी पड़े, तो इन तीन इन्द्रियों पर हाथ रख कर उन्हें बंद कर दो। ये तीन वानर-गुरु सारे वातावरणको पवित्र और स्वच्छ रखते हैं।

ऐसा था हमारे बापूका वह कमरा!

इस मंदिरसे कुछ ही दूर तीनेक झोंपड़ियां खड़ी कर दी गई थीं। एक झोंपड़ीमें टेलिफोन था, जिस पर दस दस मिनटमें अच्छे-बुरे समाचार आते रहते थे। दूसरीमें टाइपिस्ट रहते थे, जहां बापूके अत्यंत उपयोगी लेख, रसपूर्ण पत्र वगैरा टाइप किये जाते थे। तीसरी झोंपड़ीमें बापूका सामान रहता था — खाने-पीनेके साधन, दरी और छोटी-सी पतली गुदड़ी और छोटे छोटे तकिये।

एक दिन घासकी झोंपड़ीमें टेलिफोनकी घंटी टिनटिनाई। टेलिफोन उठाने पर समाचार मिले कि लेडी माउन्टबेटन बापूसे मिलने आ रही हैं! बापूने ना तो नहीं कहा, लेकिन उन्हें इस बात पर विश्वास ही नहीं हुआ।

उन दिनों दिल्लीकी राजनीतिक और कुदरती गरमी असाधारण थी। बापूजीके कमरेको ठंडा रखनेके लिए चारों ओर टट्टियां बांध कर उन पर पानी छिड़का जाता था।

१९४७ के जून मासकी छठी तारीखको दिनके ठीक चार बजे लेडी माउन्टबेटन बापूके कमरेके प्रवेश-द्वार पर लगे घासके परदेको उठाकर खड़ी हो गईं। उसी क्षण बापू

भी खड़े हुए। उन्होंने मीठी मुसकानसे लेडी माउन्टबेटनका स्वागत किया, उनसे हाथ मिलाया और पूछा : "आपकी पुत्री कहां है ? उसे क्यों नहीं लाईं ?"

लेडी माउन्टबेटनने उत्तर दिया : "वह काममें थी। किसी और दिन वह शामको आपकी प्रार्थनामें आयेगी।"

बापूने एक कुरसी तो उनके लिए रखवाई ही थी। उन्होंने अतिथिसे पूछा : "आप कहां बैठेंगी ? कुरसी पर या मेरी तरह नीचे ?"

कोई उत्तर दिये बिना ही लेडी माउन्टबेटन नीचे बापूके पास बैठ गईं। बापूके नजदीक चरखा पड़ा था। उसे उन्होंने ७८ बरसकी जईफ उमरमें कांपते हाथोंसे उठाया और चलाने लगे।

बापूके इस चरखेमें तो भारतका संपूर्ण अर्थतंत्र समा जाता है। इसी बातको समझाते हुए लेडी माउन्टबेटनसे उन्होंने कहा : "चरखेमें मेरा विश्वास दिनों-दिन अधिक दृढ़ होता जाता है। अगर हिन्दुस्तानके हर घरमें प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ आध घंटा ही रोज चरखा चलाये, तो उसे एक इंच भी कपड़ा खरीदना न पड़े। खादीके कारीगर, सुतार, लुहार, किसान, वृद्ध स्त्री-पुरुष और समझदार बच्चे — सभीका समावेश खादीके उद्योगमें हो सकता है। चरखेको मैं सूर्यकी उपमा देता हूं। इसका चक्र हर घरमें घूमे तो सारे देशमें प्रकाश फैल सकता है। तभी भारतके गांवोंका उद्धार हो सकता है और तभी हिन्दुस्तानका उद्धार हो सकता है।

"हिन्दुस्तान सात लाख गांवोंका बना हुआ है, न कि बम्बई, दिल्ली, मद्रास, कलकत्ता, लाहौर और कराची जैसे शहरोंका।

"मशीनोंसे इंजन, मोटरें, विमान और दूसरी ऐसी अनेक चीजें बनाई जा सकती हैं। लेकिन अगर आटा मशीनसे पीसा जाय, पहनने-ओढ़नेके कपड़े मशीनसे बनाये जायं, जमीन मशीनसे जोती जाय, तो इससे हिन्दुस्तानको नुकसान होगा। अगर मशीनोंका इन कामोंके लिए उपयोग किया जाय, तो देशके लाखों लोगोंको काम नहीं मिलेगा, और वे बेकार हो जायंगे। इसीलिए मैं मशीनोंका विरोध करता हूं।"

इस तरहकी थोड़ी बातचीतके बाद बापूने लेडी माउन्ट-बेटनसे पूछा: "बोलिये, मैं आपका क्या आतिथ्य करूं?" और मुझे चाय और फल लानेका आदेश दिया।

चायका कप हाथमें लेकर लेडी माउन्टबेटनने बापूका पूरे दिनका कार्यक्रम उनसे पूछा। बापूने उन्हें सुबह साढ़े तीनसे लेकर रातके ग्यारह बजे तकका अपना व्यस्त कार्य-क्रम बताया।

लेडी माउन्टबेटन आश्चर्यमें डूब गईं। यह बूढ़ा सुबह साढ़े तीन बजे उठकर रातके ग्यारह बजे तक ऐसी छटासे विविध प्रकारके कार्य कर सकता है, जो सशक्त नौजवानोंको भी लज्जित कर दे!

उन्होंने कहा: "यह ऐसे वैसे आदमीका काम नहीं है। आपके जैसे बिरले पुरुष ही इतना काम कर सकते हैं।"

उस समय भारतकी परिस्थिति इतनी खराब थी कि अच्छे अच्छे लोगोंको भी घबराहटमें डाल दे। भारतके नेताओंकी कड़ी परीक्षा हो रही थी। सारे दिन बापूजीके पास अमीर-गरीब, दुःखी-सुखी, घर-बार खोकर अनाथ बने हुए निराश्रित, निजी जीवनसे ऊबे-उकताये हुए स्त्री-पुरुष, बीमारीके कारण निराश बने हुए बीमार, गालियां देनेवाले दुश्मन और तारीफ करनेवाले दोस्त — सभी सान्त्वना पानेके लिए आते थे। उस समय बापूजी मुझे हर किसीकी मनोकामना पूरी करनेवाले भोले शंभुके समान लगते थे।

इस प्रकार सारे दिन काम ही काममें जुटे रहनेवाले बापूका इतना निर्मल स्वास्थ्य देखकर लेडी माउन्टबेटनने आश्चर्यसे पूछा : "लेकिन आपका स्वास्थ्य तो सुन्दर लगता है!"

"क्यों, आपको मेरा स्वास्थ्य देखकर ईर्ष्या होती है? मैं तो अपने रामका नचाया नाचता हूं।"

सचमुच बापूका स्वास्थ्य उनकी दृढ़ प्रबल ईश्वर-श्रद्धाका ही प्रतिबिम्ब था।

लेडी माउन्टबेटन आधे घंटे बापूके पास बैठकर यह भूल ही गईं कि वे वाइसरॉयकी पत्नी हैं। उनके सरल और सहज व्यवहारसे ऐसी प्रतीति होती थी, मानो वे बापूकी सबसे छोटी बहन या बड़ी लड़की हों।

मेरी ओर देखकर उन्होंने कहा : "तुम दुनियाकी सबसे भाग्यशाली बालिका हो। तुम्हें गांधीजी जैसे महापुरुषकी सेवा करनेका सुन्दर अवसर मिला है। परम कृपालु परमात्मासे

मेरी प्रार्थना है कि तुम्हें इन महापुरुषके पवित्र आशीर्वाद सदा ही मिलते रहें ।"

इतना कहकर उन्होंने मुझे प्रेमपूर्वक छातीसे लगा लिया ।

बापूने न जाने कितने और कैसे कैसे लोगोंके हृदयमें स्थान जमा लिया था! जिसके भी संपर्कमें वे आते — फिर वह अमीर हो या गरीब, स्त्री हो या पुरुष, अधिकारी हो या सेवक — उसके हृदयको जीत लेते थे ।

ठीक साढ़े चार बजे लेडी माउन्टबेटन खड़ी हो गईं । बोलीं: "अब मैं आपका कीमती समय ज्यादा नहीं लूंगी । आपने इतना समय मुझे दिया, इसके लिए मैं आपकी अत्यन्त कृतज्ञ हूं ।"

लेकिन बापू शिष्टतामें उनसे कम नहीं थे । कहने लगे: "इस असह्य गरमीमें मेरे घास-फूसके झोंपड़ेमें आकर आपने इतनी तकलीफ उठाई, इसलिए कृतज्ञ तो सचमुच मुझे आपका होना चाहिये ।"

इसके बाद बापूने उनसे कहा: "यहां पास ही भंगी-बस्ती है । जरा वहां जाकर रहनेवालोंके हाल तो देखिये । बेचारे मुर्दोंकी तरह जी रहे हैं!"

बापूजी तो हरिजनोंके बेली ठहरे । उन्हें हरिजनोंके उद्धारकी अतिशय चिन्ता थी ।

लेडी माउन्टबेटनने बापूका यह प्रस्ताव सहर्ष मान लिया । वे चलकर ही भंगीबस्तीके अंधेरे झोंपड़ोंमें गईं और उनमें रहनेवाले हरिजन परिवारोंके रहन-सहनका उन्होंने बारीकीसे निरीक्षण किया ।

उनका निरीक्षण चल रहा था उसी बीच हरिजनोंके भोले निर्दोष बालक उनके आसपास इकट्ठे हो गये । लेडी माउन्टबेटनने किसी बालकको प्रेमसे थपथपाया, किसीके सिर पर वात्सल्यसे हाथ घुमाया, तो किसीको बाहोंमें भर लिया । वे पूरी हिन्दी नहीं बोल सकती थीं; बालक उनकी अंग्रेजी नहीं समझ सकते थे । परन्तु जहां हृदयका प्रेम बरस रहा हो वहां भाषाका बहुत महत्त्व नहीं होता ।

यह दर्शन मेरे लिए सचमुच विराट् था ।

१०

एक दिनका विराट् दर्शन

इस कथाके अंतिम पृष्ठोंमें हम बापूजीकी प्रवृत्तियों तथा उनके प्रतिक्षण बदलनेवाले स्वरूपोंका दर्शन करें। बापूके पास रहनेवाले लोगोंको प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ नया जानने, नया सुनने, नया देखने और नया सोचनेका लाभ मिलता था ।

किसी समय हम बापूको एक पिताके नाते अपने पुत्र देवदास गांधीसे बात करते देखते, तो वे हमें आदर्श पिता मालूम होते । किसी समय किसी बीमारकी बीमारीके बारेमें, दवा-दारूके बारेमें या उसके खान-पानके बारेमें बापूको पूछताछ करते या छोटीसे छोटी सूचनायें देते देखते, तब वे हमें एक आदर्श डॉक्टर जैसे लगते ।

एक बार मुझे जोरका बुखार आया। बापू चिन्तामें पड़ गये। मेरे सिर पर ठंडे पानीकी पट्टी रखने लगे। मुझे बड़ा संकोच हुआ। दुनियाके एक महापुरुष मेरे जैसी सामान्य लड़कीके सिर पर पट्टी रखें! मेरी आंखोंसे आंसुओंकी धार लग गई।

बापूने मुझे समझाया: "जो मनुष्य सेवा करता है, उसे सेवा लेनेका पूरा अधिकार है। तू जल्दी अच्छी होकर इसके बदलेमें मेरी अधिक सेवा करना। जिसे सेवा करनी है उसे बीमार नहीं पड़ना चाहिये। और अगर बीमार न पड़ना हो, तो हमें कुदरतके नियमोंका पालन करना चाहिये। इसी तरह बीमार पड़नेके बाद किसीकी सेवा न लेनेका आग्रह भी हमें नहीं रखना चाहिये। तू स्वच्छ हवा, धूप, मिट्टी, पानी, आराम और आहार — इन चीजोंका लाभ उठाये और इन सबके साथ हृदयसे रामनाम ले, तो ऐसी बीमारियोंसे तू हमेशा बची रहेगी। तुझे पानी काफी मात्रामें पीना चाहिये, पेड़ू पर मिट्टीकी पट्टी रखनी चाहिये, टब-बाथ लेना चाहिये और सिर्फ फलोंके रस पर रहना चाहिये।

"फलोंको हम महंगा आहार मानते हैं, यह हमारी बड़ी भूल है। सच्ची बात यह है कि हम अपने आलस्यके कारण साग-भाजी या फलोंके झाड़ लगाते नहीं। अगर हमारा आलस्य और अज्ञान दूर हो जाय, तो यह महंगा आहार सस्ता हो जाय और हमारा शरीर तन्दुरुस्त रहे।

"सुबह खुले शरीर पर सहन हो सके ऐसी धूप लेनी चाहिये। उस समय सिर पर ठंडा कपड़ा रखना चाहिये।

ठंडे और गरम पानीका कटिस्नान करना चाहिये और पूरा आराम लेना चाहिये। मनका भी शरीर पर बहुत बड़ा असर होता है। इसलिए मनको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। इतना तो तुझे छह महीने तक करना ही पड़ेगा।"

ऐसी सलाह बापू मुझे ही नहीं परन्तु किसी भी बीमारको देते थे। इससे बीमारको मानसिक दृष्टिसे इतना संतोष मिलता कि उसके शरीरको भी लाभ पहुंचे बिना नहीं रहता।

कुदरती उपचारकी विस्तृत सूचनायें देनेके कुछ ही क्षणों बाद हम बापूको किसी नवयुवतीकी अंतरंग सखीके रूपमें देख सकते थे। जिस प्रकार कोई दुःखी युवती अपने हृदयकी बातें अपनी सखीके सामने खोल देती है, उसी प्रकार युवतियां अपना सुख-दुःख बापूके सामने खुले मनसे प्रकट कर देती थीं। और बापू उन्हें उचित रास्ता बताते थे।

एक युवती किसी युवकके साथ विवाह करना चाहती थी। लेकिन उसके माता-पिता इस सम्बन्धको पसंद नहीं करते थे। इससे वह बहुत समयसे दुःखी रहती थी। उसने हृदय खोलकर इस विषयमें बापूसे बातें कीं। बापूने उससे कहा: "जिस युवकके साथ तुम्हें विवाह करना है, उसका तुम पर सच्चा प्रेम है या तुम्हारे पिताके कहे अनुसार केवल प्रेमका उबाल ही है, इसकी जांच जरूर होनी चाहिये। यह जांच करनी हो तो तुम्हें और उस युवकको पांच वर्ष तक एक-दूसरेसे बिलकुल नहीं मिलना चाहिये। इस बीच दोनोंको सेवाके काममें डूब जाना चाहिये। अगर तुम दोनों एक-

दूसरेके पूरक बनना चाहते होगे, तो दोनोंका प्रेम आज जैसा है वैसा ही बना रहेगा। और पांच वर्ष तक अगर तुम दोनोंका प्रेम टिका रहा, तो मैं खुद तुम्हारा विवाह करा दूंगा ।''

उस युवतीको बापूकी इस बातसे अपार संतोष हुआ। उसके माता-पिताको भी बापूकी पांच वर्षकी शर्तसे बड़ा आनंद हुआ। जो समस्या माता-पिता और पुत्रीके बीच पिछले एक वर्षसे अनसुलझी पड़ी थी, उसे बापूने सिर्फ दस ही मिनटमें सुलझा दिया।

ऐसी किसी गंभीर समस्याको हल करनेके कुछ ही क्षण बाद ७८-७९ वर्षके बापूको हम एक विद्यार्थीके रूपमें देख सकते थे। वे रोज बंगलाका ककहरा सीखते थे और आरंभके 'माला, काका, बाबा (पिता)' जैसे शब्द लिखनेका अभ्यास करते थे। कोई ८-१० वर्षका बंगाली बच्चा बापूके पास आ पहुंचता, तो उससे वे कहते : "मुझे बंगलाकी वर्णमाला सिखाओ और छोटे शब्द लिखाओ।'' उसकी सहायतासे बापू शालाके एक सच्चे विद्यार्थीकी तरह छोटे छोटे वाक्य लिखनेका अभ्यास करते थे : "मा, भात दाओ। दीदी, जल दाओ। बाबा, पोयशा दाओ। (मां, भात दो। जीजी, पानी दो। पिताजी, पैसे दो।)'' लिखनेमें जरा भी गलती हो जाती तो जब तक वह गलती सुधरती नहीं तब तक बापू उस बच्चेको छोड़ते नहीं थे। एक पाठ पूरी तरह शुद्ध रूपमें लिखना आ जाता उसके बाद ही वे दूसरा पाठ खोलते थे। इतनी उमरमें भी जिससे जो सीखा जा सकता था वह सीखनेमें बापू गंभीरतासे जुट जाते थे।

कुछ देर पहलेके विद्यार्थी बापू आदर्श शिक्षकके रूपमें भी देखे जा सकते थे। पूज्य कस्तूरबाको बापू गुजरातीकी वाचनमाला पढ़ाते, उस समयका दृश्य देखने लायक होता था। बूढ़े बापू दूसरे या तीसरे दरजेके पाठ्यक्रमकी पुस्तक हाथमें लेकर बूढ़ी बाको पढ़ाते। उसके बाद मेरे जैसी ११-१२ बरसकी लड़कीको भूमिति सिखाते। उसके प्रमेयों और प्रयोगोंकी विभिन्न आकृतियां बनाते समय साधनोंका पॉइन्ट जरा भी आगे-पीछे न होनेकी ऐसी सावधानी रखते थे, मानो कोई कुशल चित्रकार हों। जब वे संस्कृतके पाठ और गीता पढ़ाते उस समय प्राचीन कालका काशीधाम याद आ जाता। ऐसा लगता मानो वेदकालके ऋषि और उसके शिष्योंकी पाठशाला चल रही हो। मुझे बापूसे इतिहास, भूगोल, गुजराती, गणित सभी विषय बारी बारीसे सीखनेका सौभाग्य मिला है। आज जब उस बातका मैं स्मरण करती हूं तो लगता है कि मैंने बचपनमें एक विश्ववंद्य महापुरुषसे शिक्षा ग्रहण की थी या प्राथमिक और माध्यमिक शालाके किसी शिक्षकसे? और वह सब स्वप्न था या सत्य?

यह लिखते समय जब मुझे ये बातें स्वप्न जैसी मालूम होने लगीं, तो मैंने उस समयकी पुरानी नोटबुकें खोल कर देखीं। उनमें मेरे लिखे हुए पाठोंके नीचे बापूके हस्ताक्षर हैं। परीक्षाके जो प्रश्नपत्र बापू अपने हाथसे उनमें लिखते थे, वे भी जैसेके वैसे मौजूद हैं। इससे मुझे लगा कि वह स्वप्न नहीं परन्तु सत्य था। इस सद्भाग्यके लिए मैंने मन ही मन ईश्वरका और अपने पूर्वजोंका उपकार माना।

शिक्षकका कर्तव्य निबाहनेके कुछ क्षण बाद ही बापू पाकशास्त्रमें कुशल किसी गृहिणीका रूप धारण कर सकते थे। रसोईघरमें सारी चीजें व्यवस्थित रीतिसे कैसे रखना, साग कैसे काटना, उसे कैसे धोना और कैसे पकाना, कमसे कम ईंधन जलानेकी सावधानी रखते हुए भी भोजन अच्छी तरह कैसे तैयार करना — ये सारी बातें बापू जब मुझे गंभीरतासे सिखाते थे तब मैं इस बातको भूल जाती थी कि मेरी मां या पूज्य कस्तूरबा इस जगतमें नहीं हैं।

इसकी एक मिसाल आपको दूं। एक बार बापूके पेटमें कुछ गड़बड़ी पैदा हुई। चर्चाके बाद यह फैसला किया गया कि बापूको कुछ दिनके लिए गेहूंका भोजन छोड़ देना चाहिये। चावलके हाथपिसे मोटे आटेको बकरीके दूधसे बने दहीमें मिलाकर खमीर पैदा किया जाय और उसकी कोई चीज बनाई जाय, तो वह बापूके लिए हलकी होगी और उन्हें अनुकूल आयेगी — यह सोचकर बहुमतसे बापूके लिए इडली बनानेका निर्णय किया गया। हमने इडली बनाई जरूर, लेकिन इडली असलमें तो मद्रासका खास भोजन कहा जायगा। इसलिए उसमें मिलाई जानेवाली हर चीजका उचित प्रमाण जाननेके लिए पहले बापूने लक्ष्मी काकी (देवदास काकाकी पत्नी) को पकड़ा और फिर उनके पिता राजाजीसे इसकी चर्चा की। राजाजी उस समय भारतके गवर्नर-जनरल थे। आज उनके साथ राजनीतिकी बातें न करके बापूने इडलीकी बात छेड़ी। राजाजी बोले : "लेकिन उड़दकी दाल-के बना इडली बन ही नहीं सकती।" बापू उड़दकी दाल

बिलकुल नहीं खाते थे, बल्कि उसके विरुद्ध थे। दोनोंके बीच इस विषयमें रसप्रद चर्चा हुई। वैसे इस बातका कोई अधिक महत्त्व नहीं था। परन्तु दोनोंकी गंभीर बातोंको सुनकर ऐसा लगता था कि दोनों जैसे भारतकी स्वतंत्रतासे सम्बन्ध रखनेवाले किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्नकी चर्चा कर रहे हों। लेकिन किसी चर्चाका अंत लानेमें भी बापू उतने ही दृढ़ रहते थे। उन्होंने कह दिया : "इडलीमें केवल चावलका आटा ही रहेगा।"

बस, चावलोंका मोटा दरदरा आटा पिसवाया गया। बापूने हाजिर रहकर अपने सामने ही आटेको छांछमें मिलवाया और उसमें सोडा-बाई-कार्ब खुद मिलाया। निश्चित मात्रामें सोडा-बाई-कार्ब डालते समय उनके चेहरे और हाथोंका हावभाव देखने जैसा था। आज भी उस दृश्यको मैं भूली नहीं हूं। इसके बाद स्वयं घड़ीमें देखकर अमुक मिनट तक ही आटेको खमीर पैदा होनेके लिए छांछमें रहने दिया। खमीर उठते ही उसकी इडली बनाई गई। बहुत सुन्दर फूली हुई इडली बनी। यह इडली बापूने सबको चखाई। परन्तु उसमें नमक नहीं डाला गया था। इसलिए वह खानेवालोंको बहुत पसंद आई हो ऐसा उनके चेहरेके भावसे लगता नहीं था।

लेकिन बापूके भोजनमें स्वादका बिलकुल महत्त्व नहीं था। वे मानते थे कि "हमारा शरीर ईश्वरका दिया हुआ है। जिस प्रकार किरायेके घरमें रहते हुए भी हमारा घर स्वयं हमें और दूसरोंको अच्छा लगे इसलिए हम सावधानीसे

उसे साफ-स्वच्छ रखते हैं, उसी प्रकार ईश्वरके दिये हुए इस शरीररूपी घरकी सार-संभाल करके उसे हमें स्वच्छ, स्वस्थ और पवित्र रखना ही चाहिये। गलत-सलत या हानिकारक चीजें खाकर उसे बिगाड़ना नहीं चाहिये। शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेके लिए जो भोजन हम खायें उससे प्राप्त होनेवाली शक्तिसे हमें लोगोंकी उत्तम सेवा करनी चाहिये, न कि मौज-शौकमें पड़ना चाहिये। यदि हम प्रभुके दिये हुए इस शरीरको पूर्ण स्वस्थ और सशक्त रखकर उसके द्वारा जीवमात्रकी सेवा न करें तथा परमात्माके दिये हुए मनुष्य-जन्मको सफल न बनायें, तो हम उसके अपराधी सिद्ध हों।"

इसलिए बापूजी अपने शरीरको ईश्वरकी प्रसादी मानकर सावधानीसे उसकी सार-संभाल करते थे।

बापूका पूंजीवादी बनिये या व्यापारीका रूप भी देखने जैसा होता था। कोई स्त्री सोनेकी अंगूठी या चूड़ियां पहनकर उनके पास आती तो बापू उसे समझाते कि हमारा भारत बहुत गरीब है; तुम्हें उसकी कुछ न कुछ मदद तो करनी ही चाहिये। तुम मुझे क्या देनेवाली हो? वह स्त्री कहती: "आप कहें वही मैं दे दूंगी।" और अपने सारे गहने उतारकर वह खुशी-खुशी बापूजीके चरणोंमें रख देती।

बापूजी सुनारसे गहनोंकी कीमत कराते और प्रार्थना-सभामें जब उनका नीलाम चलाते, उस समय वे 'सच्चे गांधीहाट' में बैठे व्यापारी मालूम होते थे। उदाहरणके लिए, सुनारने किसी अंगूठीकी कीमत रु० ५०० आंकी हो, तो बापू

यह बात प्रार्थना-सभामें बताते और दरिद्र-नारायण तथा 'हरिके जनों' जैसे हरिजनोंके लिए लोगोंको ऊंची और ज्यादा ऊंची बोली लगानेका प्रोत्साहन देकर इस तरह अंगूठीको नीलाम करते कि उसके रु० ५००० मिल जाते ! समाज द्वारा परित्यक्त और पिछड़ी हुई प्रजाके सेवकके रूपमें हमें बापूमें भारतीय जनताके राष्ट्रपिताके दर्शन होते थे ।

जनसेवकोंको सही मार्ग बतानेका भी बापू उतना ही खयाल रखते थे । एक बार एक सज्जन मेरे लिए कुरती और सलवारकी खादी खरीदकर लाये । वे मारवाड़ी रिलीफ सोसायटीके अच्छे कार्यकर्ता थे और जीवनमें खूब सुखी थे । बापूकी पोती होनेके कारण मेरे लिए खरीदी हुई खादीके पैसे लेनेसे उन्होंने इनकार कर दिया । बापूके प्रति उनकी भक्ति भी इसका कारण थी । लेकिन ऐसी बातोंमें बापूकी दृष्टि बिलकुल अलग थी । मारवाड़ी सज्जनसे उन्होंने कहा : "खादीके पैसे तुम कहांसे निकालोगे ? तुम्हारे पास जो पैसे हैं वे तो जनताके हैं । मनुकी जगह अगर मैं होऊं तो भी मेरी निजी जरूरतें पूरी करनेके लिए तुम सार्वजनिक पैसेमें से एक पाई भी इस तरह व्यर्थ खर्च नहीं कर सकते । इसके सिवा, इस लड़कीके पिता इसकी खादीके दाम तो आपको दे ही सकते हैं । जनसेवकको इस बातका पूरा खयाल होना चाहिये कि जनताके पैसेका कैसा उपयोग किया जाय और कहां उपयोग किया जाय । आज तुमने मनुके लिए इतना पैसा बरबाद किया; कल तुम अपने ही सगे-सम्बन्धियोंके

लिए इस तरह जनताका पैसा बरबाद नहीं करोगे इसका क्या भरोसा? देखो, मुझे तुम पर जरा भी संदेह नहीं है, क्योंकि मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूं। तुमने प्रेमके कारण मुझसे पैसे न लेनेकी बात कही है। लेकिन इस छोटी-सी बातसे तुम्हें सावधान हो जाना चाहिये।" इस घटनामें हमें इस बातका दर्शन होता है कि बापूजी जनसेवकोंके चरित्रको नीचे न गिरने देनेके लिए कितनी सावधानी रखते थे।

बिहारके भयंकर कौमी दंगोंके समय बापू जनताके अपराधी वर्गको कानूनके जोरसे दबानेके पक्षमें नहीं थे; वे प्रेम और क्षमाके व्यवहारसे ऐसे लोगोंका सच्चा हृदय-परिवर्तन करना चाहते थे, ताकि वे दुबारा कभी ऐसे अपराध न करें। इस दृष्टिसे बिहारके मंत्रियोंसे सलाह करनेके बाद बापूने बिहारकी एक प्रार्थना-सभामें घोषणा की: "जो कोई मेरे पास आकर अपना अपराध स्वीकार कर लेगा, उसे बिहार सरकार कोई सजा नहीं देगी।" आजके जमानेमें भयंकर हत्याकांडोंमें भाग लेनेवाले हत्यारोंको इस तरह वचन देना आगमें हाथ डालनेका ही एक प्रयोग था। परन्तु बापू इस प्रयोगमें कुछ हद तक सफल हुए। जब भयंकर अपराधी अपने हथियार बापूके चरणोंमें रखकर अपने अपराध उनके सामने स्वीकार करते, उस समय बापूजी एक वात्सल्यपूर्ण पिताकी तरह सान्त्वना देकर उन्हें सच्चा रास्ता बताते थे। उस पवित्र दृश्यको देखकर हमें भगवान बुद्ध, महावीर और ईसा मसीहकी कथाओंका स्मरण हो आता था।

बिहारमें एक भयंकर हत्यारा था। उसे पकड़नेके लिए बिहार सरकारने एक बड़ी रकमके इनामकी घोषणा की थी। यह अपराधी रोज अलग अलग वेश बदल कर बापूकी प्रार्थनामें आता, उनकी प्रवृत्तियोंमें शरीक होता। मुझे भी वह कई बार फंडके पैसे गिननेमें मदद करता। बापूके दैनिक कार्यक्रमके बारेमें मुझसे पूछता। उस समय मैं जानती नहीं थी कि यह वही आदमी है, जिसे बिहार सरकार तलाश कर रही है। मैं तो ऐसा मानती थी कि वह बापूका कोई भक्त होगा और दूसरे लोग जैसे मुझ पर तरस खाकर मेरे काममें हाथ बंटाने आ जाते हैं उसी तरह वह भी आता होगा।

एक बार हम राज्यके बिहार शरीफ जिलेके गांवोंमें यात्रा कर रहे थे। बापूजी एक गांवकी शालामें ठहरे थे। उन गांवोंमें धर्मके नाम पर जो दंगे हुए थे और लोगोंने पक्के मकानोंको भी जलाकर राख कर दिया था, उससे बापूजीको गहरी मानसिक वेदना हुई थी। उस गांवमें बापूका स्वागत करनेके लिए आसपासके गांवोंसे हजारों लोग जमा हुए थे। दर्शनार्थियोंका तांता लगा रहनेसे एक पलकी भी शांति बापूको नहीं मिली। एक जमींदोज बने हुए मकानको देखनेके लिए जाते समय बापूको रास्तेमें पत्थरकी ठोकर लग गई, जिससे उनके पैरमें खून निकल आया। कुछ क्षणोंके लिए तो वे बेहोश-से हो गये। चोटके कारण उन्हें थोड़ा बुखार भी आ गया।

रातमें बापूको जल्दी सुलाकर मैं बादशाह खानके लिए खाना बना रही थी। इतनेमें वही जाना-पहचाना भाई यहां

भी आ पहुंचा। मैंने उससे पूछा: "तुम पटनासे यहां कैसे आ गये? बापूकी तुम बहुत सेवा करते हो। लेकिन अपना कामधंधा छोड़कर अगर तुम बापूके पीछे गांवोंमें न भटको, तो तुम्हारी सेवा अधूरी नहीं रहेगी। और दो दिन बाद तो हम पटना आनेवाले ही हैं।" उसकी आंखोंसे आंसुओंकी धार लग गई। मैंने पूछा: "रोते क्यों हो? किसीने कुछ कहा तो नहीं?" वह बोला: "मुझे किसीने कुछ नहीं कहा, बहन। पर आज बापूजी जो मकान देखने गये थे, वहां उन्हें पत्थरकी ठोकर लगनेसे पैरमें खून निकल आया, उन्हें कुछ चक्कर भी आ गये, वे पीले पड़ गये और बड़ी कठिनाईसे पड़ाव पर पहुंचे — इस सबका अपराधी मैं ही हूं।"

मैं उस भाईकी बात सुनकर अवाक् हो गई। मेरे हाथकी संड़सी जहांकी तहां रह गई। मैं स्तब्ध बनी खड़ी रही। समझ ही नहीं पाई कि यह भाई क्या कह रहा है।

मैंने उससे पूछा: "भाई, तुम क्या कह रहे हो?"

"बहन, मैं बिलकुल सच कह रहा हूं।"

पांच हाथके उस ऊंचे-पूरे कद्दावर और बलवान आदमीकी आंखोंसे फिर झर-झर आंसू गिरने लगे।

मेरे पांवोंके पास बैठकर वह बोला: "बहन, तुम मेरी सगी बहन जैसी हो। मैं पिछले एक महीनेसे तुम्हें, बापूको और दूसरे सब लोगोंको देख रहा हूं। तुम सबको इस भयंकर आगमें जलानेका पाप मेरे सिर पर है। अब मुझे यह पाप नहीं करना है। इसलिए तुम बापूसे जाकर कह दो कि मैं वही आदमी हूं, जिसकी बिहार सरकार खोज

कर रही है और जिसे पकड़नेके लिए उसने हजारोंका इनाम घोषित किया है। मुझे तो फांसीकी सजा हो तो भी मैं अपने भयंकर पापसे मुक्त नहीं हो सकता। लेकिन बापूके चरणोंमें बैठकर यह पाप स्वीकार करके मुझे पावन होना है। लोग बापूके चरणोंमें हीरे-मोती और जवाहरात रखते हैं, लेकिन मुझे उनके चरणोंमें अपना यह पाप धरना है।"

मैं उसके नामसे तो परिचित थी, क्योंकि उसके नामकी चर्चा मंत्रि-मंडलमें भी अच्छी तरह हुई थी और एक हत्यारेके नाते उसका नाम बदनाम हो चुका था। परन्तु जब एक हत्यारेके नाते मैंने उसे जाना तो मैं भी घबरा गई। मनमें आशंका हुई कि यह आदमी कहीं बापूजीकी और हम सबकी हत्या तो नहीं कर डालेगा? परन्तु मैंने मनका भय उसे जानने नहीं दिया, न मैं वहांसे हटी। मैं उसकी बातें सुनते हुए मूढ़की तरह खड़ी रही। लेकिन वह भाई मुझसे आग्रह करता रहा: "बहन, तुम इसी समय जाओ। अभी बापू सोये नहीं होंगे। अब मैं प्रायश्चित्तमें देर करनेका पाप अपने सिर नहीं लेना चाहता। बहन, तुम जल्दी जाओ।"

मैं दुविधामें पड़ गई: अगर मैं जाकर बापूको यह सब बताऊं और उसके फलस्वरूप कहीं हजारोंकी हत्या करनेवाला यह आदमी बापूकी हत्या कर दे, तो मैं दुनियाको क्या मुंह दिखाऊंगी? इसके सिवा, बापूके पत्र मैं लिखती थी, उनका निजी कामकाज भी सब मैं ही करती थी। परन्तु बाहरसे आनेवाले लोगोंकी मुलाकातकी व्यवस्था मृदुलाबहन करती थीं, जिससे कोई अनुचित बात न हो जाय और

गलत जिम्मेदारी मेरे सिर पर न आ पड़े। फिर, उन दिनों मैं शरीरसे और मनसे भी बहुत छोटी थी; इसलिए बापूसे इस अपराधीको मिलानेकी भारी जिम्मेदारी मैं अपने सिर नहीं लेना चाहती थी।

सब कोई यह जानते थे कि बापूजी इस समय सो ही जानेवाले हैं। इसलिए मृदुलाबहन और मंडलीके दूसरे सब लोग लोक-संपर्कके लिए बाहर निकल गये थे। सिर्फ मैं, बापूजी, बादशाह खान और आसपास चौगानमें एक-दो आदमी और रहे होंगे।

कुछ सूझता नहीं था कि क्या करूं? अगर न जाऊं तो यह भाई मनमें दुःखी होगा। शायद बादमें पता चलने पर बापू मुझसे कहें: "तू मुझे जिलानेवाली कौन होती है? रामजीको मुझसे सेवा लेनी होगी तब तक वे मुझे जिलायेंगे। उससे ज्यादा एक पलके लिए भी वे मुझे जिन्दा नहीं रखेंगे।"

दूसरा विचार मनमें आता कि अगर मैं जाती हूं तो भारी खतरा मोल लेती हूं। आखिर मैं भगवानका नाम लेते लेते बापूके पास गई। वे अभी जाग ही रहे थे। मैं चुपचाप मच्छरदानीके पास खड़ी रही। तुरन्त उन्होंने पूछा: "कौन?" मैंने उत्तर दिया: "मैं हूं, बापूजी! आपकी तबीयत कैसी है?"

बापूजी बोले: "बुखार तो मेरा बढ़नेवाला है। लेकिन हम तो रामजीके नचाये नाचते हैं। इसलिए तू मेरी चिन्ता छोड़ दे। खान साहबको जिमाया? तूने खाना खाया? जल्दी सोने आ जाना।"

इस तरह बापूने दो चार वाक्य एक साथ कह डाले।

मैंने कहा : "बापूजी, मैं एक मुसीबतमें पड़ गई हूं।"

उन्होंने तुरन्त पूछा : "कौनसी मुसीबत ?"

मैंने सारी बात विस्तारसे कह सुनाई। बापू बोले : "ओहो, इसमें घबरानेकी क्या बात है? उसके हाथसे ही मेरी हत्या होनेवाली होगी, तो तू क्या मुझे बचा सकेगी?"

बापूजी उठ बैठे। अपनी मच्छरदानी उन्होंने ऊंची कर दी। फिर कहा : "जा, उस भाईको बुला ला।"

इस ओर बिहारमें भयंकर अपराधी माने जानेवाले इस आदमीका चेहरा अत्यन्त दीन बना हुआ था। उसके शरीरके प्रत्येक हावभावमें प्रायश्चित्तकी अपूर्व भावना दिखाई पड़ती थी। वह हाथ जोड़ कर खड़ा था। मैं उसे बापूके पास ले गई। लम्बी-चौड़ी कायावाला वह भाई सिरसे पैर तक थर-थर कांप रहा था। बापूके चरणोंमें सिर रखकर वह खूब रोया। "भाई, शांत हो जाओ।" कह कर बापू उसके सिर पर और पीठ पर प्रेमसे हाथ घुमाने लगे। बापूने उसे खूब रोने दिया। फिर मुझसे कहा : "इस भाईके लिए तू पानीमें शहद मिला कर ला और इसे देकर चली जा।" बापूने सोचा होगा कि मेरे सामने उस भाईको उनसे क्षमा मांगनेमें शायद संकोच हो। मैं शहदका पानी ले आई। उस भाईसे बापूजीने कहा : "देखो, जिस तरह नीबूके पानीमें शहद मिल गया है उसी तरह तुम भी अब कौमी एकताके कार्यमें घुलमिल जाओ। तुम्हारे पापका प्रायश्चित्त फांसी नहीं है। इस दुनियामें आये हुए प्रत्येक जीवको एक समय तो

मरना ही है। इसलिए अगर तुम्हें फांसी दी जाय तो तुम इस शरीरसे तो छूट जाओगे, लेकिन तुम्हें मोक्ष नहीं मिलेगा। जो मनुष्य जीवनमें पाप करके उसका प्रायश्चित्त करता है वही महान है, फांसी पर चढ़नेवाला मनुष्य नहीं।"

यह भाई जीवनमें खूब सुखी था। इस बातको ध्यानमें रखकर बापूने उससे कहा: "कितनी ही बहनें और लड़कियां तुम्हारे नामसे घबराती हैं। (मैंने भी अपनी बात बापूजीसे कही थी।) इस लड़कीकी तो तुमने मदद और सेवा ही की है, फिर भी तुम्हारा सच्चा परिचय होते ही यह घबरा उठी थी। तो जिन स्त्रियोंने तुम्हारे अत्याचारकी बातें सुनी हैं — जनता तुम्हारे नामसे घबराकर अपने घरबार छोड़कर भाग खड़ी हुई है — उनके अब तुम पिता और भाई बन जाओ और अपनी सम्पत्तिका उपयोग बहनों, लड़कियों और माताओंके कल्याणके लिए करो। परन्तु जो कुछ करो वह हृदयसे करो — बापू कहते हैं इसलिए नहीं, बापूको चोट लगी है इसलिए नहीं, बापूको बुखार आया है इसलिए भी नहीं। तुम्हें ईश्वरने तुम्हारा कर्तव्य बताया है, इसलिए तुम्हारा हृदय सौ बार स्वीकार करे तो ही तुम मेरा कहा करना।"

वह भाई तो एक भी शब्द बोलनेकी स्थितिमें नहीं था। भक्तको भगवान मिल जायं, तो उसकी दशा कैसी होगी? बापूके चरणोंमें उस भाईका सिर था और बापूका प्रेमल हाथ उसके सिर और पीठ पर घूमकर उसे शुद्ध, पवित्र बना रहा था।

बड़ी मुश्किलसे बापूने उस भाईको खड़ा किया। बापूने उस पर अपना अपार वात्सल्य बरसाया। उस हृदय-द्रावक दृश्यको देखकर लगता था, मानो बरसोंसे विदेश गया हुआ बेटा फिरसे बापको मिला हो और बाप उस पर अपना प्यार बरसा रहा हो।

दूसरे दिन वह भाई चांदीकी खुरपी लेकर आया। उसने बापूसे प्रार्थना की कि मेरी जितनी भी जमीन है वह सब मैं सेवार्थ दान करना चाहता हूं। जो लोग घर-बारसे वंचित हो गये हैं, उन्हें मकान बांधकर इसी जमीन पर बसाया जाय। आप ही अपने हाथसे इस कॉलोनीका शिलान्यास करें।

बापूने कॉलोनीकी नींव डाली और खुरपी अपने पास रख ली। वह खुरपी आज भी कौमी एकताकी अनोखी सफलताके प्रतीकके रूपमें मेरे पास सुरक्षित है। उसे देखते ही ऊपरका विराट् दर्शन मेरी आंखोंके सामने तैरने लगता है।

अखबारोंके प्रतिनिधि तो बापूके साथ घूमते ही रहते थे। यह प्रसंग मैंने ए० पी० आई० के प्रतिनिधिको सुनाया और कहा कि आज मैंने चन्द्र और तारोंकी साक्षीमें अहिंसा और प्रेमकी अद्भुत विजयके दर्शन किये। प्रतिनिधिने इस प्रसंगकी एक रिपोर्ट अखबारोंके लिए तैयार की और बापूको दिखाई। अखबारवालों पर बापूने यह शर्त लगा रखी थी कि यात्रासे सम्बन्धित कोई भी नया समाचार प्रकाशित करानेसे पहले आप मुझे दिखायें।

विशाल हृदयवाले बापूने यह रिपोर्ट पढ़कर उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले। पत्र-प्रतिनिधिसे उन्होंने कहा: "यह सब मैंने जनताको बताने या अखबारोंमें छपवानेके लिए थोड़े ही किया है? रामकी इच्छासे सब कुछ हुआ है। मैं इसका यश लेनेवाला कौन होता हूं? उसकी इच्छाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। ऐसी बातें कभी भी अखबारोंमें नहीं दी जा सकतीं।"

बिहार सरकारको जब इस घटनाका पता चला, तो एक प्रस्ताव उसकी ओरसे यह भी रखा गया: "ऐसे हत्यारेका क्या भरोसा? उसे जेलमें ठूंस देना चाहिये।" उस समय बापूने कहा: "तो सबसे पहले मुझे जेलमें बन्द करना होगा।"

उस रात बापू बहुत देरसे सोये। लेकिन उन्हें इसकी परवाह नहीं थी। न उन्हें बढ़ते जा रहे बुखारकी चिन्ता थी। उन्हें सिर्फ उस भाईके हृदयको शान्त करनेकी ही परवाह थी। खानसाहबको भी खाना खानेमें देर हो गई। उन्हें बहुत देरसे इस घटनाका पता चला। जाननेके बाद वे इतना ही बोले: "महात्माजीको पहचानना बहुत कठिन है। इन्सान होते हुए भी वे हमारे कुरान शरीफके मुहम्मद पैगम्बर साहबके जैसे ही 'फकीर' हैं। उनको जो पहचानेगा वह कभी दु:खी नहीं होगा।"

वर्षों बाद मैं 'बापूका जीवन-दर्शन' से सम्बन्धित व्याख्यान-मालाके कार्यक्रममें भाग लेनेके लिए एक बार बिहार गई। वहां जाने पर इन भाईके दर्शन करके पवित्र

बननेकी इच्छा मेरे मनमें उठी। सौभाग्यसे उनकी संस्थामें जानेका कार्यक्रम भी पहलेसे तय हो चुका था। मैं वहां गई थी। आज वे भाई नहीं हैं, परन्तु उनका कार्य जीवित है। बापूके अवसानसे उनके दिलको गहरी चोट लगी थी। वे पागल हो गये थे और बापूके जानेके कुछ ही समय बाद इस दुनियासे चले गये। परन्तु उनकी दान की हुई जमीनका बहुत सुन्दर उपयोग होते देखकर मनको किसी पवित्र स्थानकी यात्राका आनंद हुआ।

आदर्श स्वच्छता और सफाई बापूके जीवनका एक ध्येय था। कहीं मैला पड़ा हुआ दिखाई देता या दूसरी कोई गंदगी मालूम होती, तो बापू दूसरोंसे न कहकर खुद उसे साफ कर देते थे। भारतकी कौमी आगको शांत करने और हिन्दू-मुसलमानोंको एकता, प्रेम और भाईचारेका सन्देश सुनानेके लिए बापू नोआखालीके गांवोंमें पैदल यात्रा करते थे, उस समय उन्होंने अनेक बार हाथमें झाड़ू लेकर नोआ-खालीके गंदे रास्तोंको साफ किया था।

एक बार १९४७में हम पटनामें एक मंत्रीके बंगलेमें ठहरे थे। मंत्री स्वयं जिस बंगलेमें रहते थे उस बंगलेमें ठहरनेसे बापूने इनकार कर दिया। इसलिए उसके पास एक दूसरे बंगलेमें बापूको ठहराना तय हुआ। लेकिन यह बंगला बहुत गंदा था। चपरासीसे साफ कराना बापूको पसंद नहीं था। इसलिए यह काम मेरे जिम्मे आया। मैं यथाशक्ति बंगलेकी सफाई कर रही थी। इतनेमें बापू भी कहींसे झाड़ू लेकर खिड़कियां झाड़ने लगे। वह समय ऐसा था जब केवल

भारत ही नहीं बल्कि सारा जगत बापूकी और बापूके नामकी पूजा करता था। ऐसे समय बापूको हाथमें झाड़ू लेकर डॉ० सैयद महमूद साहबका बंगला साफ करते देखकर लगता था कि उन्हें भारतकी आजादीकी जितनी चिन्ता नहीं है उतनी इस बंगलेके कमरोंकी सफाईकी है!

बापूका अतिथि-सत्कार कभी आपने देखा है? भारतकी भव्य संस्कृति कहती है कि अपने घर आये हुए अतिथिका हमें हार्दिक सत्कार करना चाहिये। जो भी बापूसे मिलने आता उसकी आदतों वगैराके बारेमें जानकर बापू सारी सुविधायें उसके लिए खड़ी करा देते थे। बाहरसे कोई मेहमान आता तब सवेरे उठनेसे लेकर रातको सोने तकके समयमें उसे सारी सुविधायें मिलीं या नहीं, इसकी पूरी चिन्ता बापू रखते थे और उसके बाद ही सोते थे।

मौलाना अबुल कलाम आजाद साहबको सिगरेट पीनेकी आदत थी। इसलिए वे जब बापूसे मिलने आते उस समय अचूक रूपमें उन्हें अपने सामने सिगरेटकी राख डालनेके लिए रकाबी रखी हुई मिलती। किसी समय रकाबी रखनेमें भूल हो जाती, तो बापू स्वयं उठकर रकाबी उनके सामने रख देते थे। उस समय मौलाना साहब बहुत शरमिन्दा हो जाते थे। लेकिन बापू कहते: "आप मेरे मेहमान हैं न?"

समय समय पर वयोवृद्ध बापूको बालकोंके साथ बिलकुल बालक बनते देखनेका सौभाग्य भी मुझे मिलता था। बालक देशके हों या विदेशके, बापू उनके साथ बालक बनकर किलोल करने लग जाते थे। देवदास काकाका नन्हा गोपू

जब बापूसे कहता, "चलो, दादा खेलेंगे," तो बापू छोटे बच्चेकी तरह उसके साथ 'सात ताली' का खेल खेलने लगते थे ।

१९४७ में भारतकी राजधानी दिल्लीमें एशियन कान्फरेन्स हुई थी, जिसमें एशियाके विभिन्न राष्ट्रोंके प्रतिनिधि आये थे । उनके साथ आये हुए बालकोंने भारतके राष्ट्रपितासे मिलनेकी इच्छा प्रकट की । उन दिनों बापू भंगीबस्तीमें रहते थे । वहीं सब बच्चे सुबह नौ बजे उनसे मिले । गरमीके दिन होनेसे बापू सुबहका भोजन जल्दी ही कर लेते थे । इसलिए उसी समय मैं उनकी थाली परोसकर लाई । उनके खानेमें ये चीजें रहती थीं : तीन-चार खाखरे, उबला हुआ साग, बकरीका दूध और संतरे जैसा कोई फल । इन विदेशी बालकोंने बड़ी शिष्टता दिखाते हुए यह जानना चाहा कि बापूजी भोजनमें क्या क्या चीजें लेते हैं । बापूजीने अपनी थालीके चारों खाखरे तोड़ तोड़कर इन बच्चोंको बांट दिये । फिर उन्होंने मुझसे कहा कि और खाखरे तुम्हारे पास हों तो बाकी रहे बालकोंमें बांटनेके लिए ले आओ । बालकोंकी खुशीका पार न रहा । बालक संसारके विभिन्न देशोंसे आये थे । एक देशके बालकोंकी भाषा दूसरे देशके बालक समझते नहीं थे । दुभाषियोंकी मददसे बापू और बालकोंके बीच विचारोंका आदान-प्रदान होने लगा । परन्तु ऐसा लगता था कि दोनोंके बीच हृदयकी मूक भाषामें अधिक बातें हो रही थीं । उस भावनापूर्ण दृश्यको देखकर ऐसा लगता था, मानो बापू और बालकोंके बीच युगोंका प्रेम-सम्बन्ध हो ।

एक बालकने बापूको अपनी जेबसे निकालकर एक चाकलेट दिया। बापू जोरसे हंस पड़े। उन्होंने सब बालकोंसे कहा: "देखो, यह मेरी लड़की तुम सबसे उमरमें बड़ी है, परन्तु मेरी नजरमें तो तुम जैसी बच्ची ही है। चाकलेट सिर्फ एक है। सबको बांटा नहीं जा सकता। इसलिए तुम सब कहो तो यह चाकलेट मैं इस लड़कीको दे दूं।"

सब बालक एक स्वरमें हां कह उठे।

इन बालकोंमें एक तेरह बरसकी बाला भी थी। उसने बापूको कोई ऐसी भेंट देनेकी इच्छा प्रकट की, जो चिरस्मरणीय रहे। उसने वहीं बैठकर बापूके लिए एक सुन्दर पर्स तैयार किया। लेकिन बापूने कहा: "मेरे पास तो इसमें रखनेके लिए फूटी कौड़ी भी नहीं है।"

बाला विचारमें पड़ गई। पैसे कहांसे लाये? इतनेमें पंडित जवाहरलालजी आ पहुंचे। उन्होंने उस बालाके लिए सौ रुपयेके नोटोंका इन्तजाम करा दिया। वह खिल उठी। उसने सौ रुपयेके नोट पर्समें रखे और पर्स इन शब्दोंके साथ बापूको भेंट कर दिया: "किसी अच्छे कार्यमें आप इनका उपयोग करें।"

बापू खिलखिला पड़े। उन्होंने उस बालासे कहा: "बेटी, इस पैसेका उपयोग मैं भारतकी तुम्हारे ही जैसी छोटी छोटी गरीब लड़कियोंके कल्याणमें करूंगा। ठीक है न?"

यह सुनकर उस बालाकी प्रसन्नता और बढ़ गई।

जापानके बालकोंने अपनी हाथकती और हाथबुनी शुद्ध रेशमी खादीके दो टुकड़े कच्छकी तरह उपयोग करनेके लिए

बापूजीको अर्पण किये । बापूजीने सब बालकोंसे हाथ मिलाया और मुझसे कहा: "मेरा चरखा इन बालकोंको दिखा दे ।"

ब्रह्मदेशके बालकोंने बापूको एक सुन्दर पेटी भेंट की । एक बालकने चरखेका सुन्दर प्रतीक बापूके हाथमें रखते हुए कहा: "ये हिन्दुस्तानके राष्ट्रपिता महात्मा गांधी चरखा चला रहे हैं!"

सारा कमरा हंसीसे गूंज उठा ।

गीतामें भगवान कृष्णने कहा है: 'प्रत्येक मनुष्यको यज्ञ करना चाहिये । जो मनुष्य यज्ञ किये बिना खाता है, वह चोरीका अन्न खाता है ।' बापूजी कहते थे कि भारतके करोड़ों भूखे लोगोंके खातिर सबको श्रमरूपी यज्ञ करना चाहिये । ऐसा श्रम बापूने खोज निकाला था । वह है चरखेकी आराधना, चरखेकी पूजा । बापूका कहना था कि जो आदमी दूसरा कोई श्रम न कर सके, वह कमसे कम चरखा चलानेका श्रम तो अचूक रूपमें करे ही । वयोवृद्ध बापू जब चरखा चलाते थे तब सूतके एक एक तारके साथ भारतके सारे निवासियोंकी चिन्ता करते थे और प्रभुका नाम रटते थे ।

इस प्रकार दिनके चौबीस घंटोंमें बापूके विविध रूपोंका विराट् दर्शन करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त होता था ।

विभिन्न विभूतियोंके इस विराट् दर्शनके अंतमें गीताके निम्नलिखित श्लोकोंका रटन करके मैं राष्ट्रपिता बापूको तथा राष्ट्रभक्तोंको हृदयसे प्रणामांजलि अर्पित करती हूं और

ईश्वरसे प्रार्थना करती हूं कि इस विराट् अमर दर्शनकी झांकी सबके जीवनको ज्योतिर्मय बनाये ।

गीताके जिन श्लोकोंका मैंने ऊपर उल्लेख किया है, वे श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके अद्भुत संवादके अंतमें संजय द्वारा कहे गये हैं :

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषं अद्भुतं रोमहर्षणम् ।।
व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद् गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात्कथयतः स्वयम् ।।
राजन् ! संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ।।
तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन्! हृष्यामि च पुनः पुनः ।।
यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।।

———

पूज्य बापूजीके विराट् दर्शनके अलावा इस पुस्तकमें ऐसे कई महापुरुषोंकी जीवन-झांकियां मिलती हैं, जिनका गांधीजीसे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा । पूज्य महादेव भाई, श्रद्धेय किशोरलाल मशरूवाला और श्री देवदासभाईकी विभिन्न स्मृतियोंसे उनके प्रति हमारी श्रद्धा अधिक गहरी बन जाती है । सरदार वल्लभभाई पटेल, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरहदी गांधी खान अब्दुल गफ्फार खान, श्रीमती सरोजिनी नायडू और लॉर्ड तथा लेडी माउन्टबेटनके भावपूर्ण संस्मरण भी सम्मिलित किये गये हैं। इसलिए इस प्रकाशनका महत्त्व और भी बढ़ गया है ।

– श्रीमन्नारायण


Mandir Library
No. ....
Date ....
JAMMU.
